# प्राक्कथन

आज से प्रायः ५० वर्ष पूर्व जब मेरी अवस्था लगभग १४, १५ वर्ष की थी, आर्य समाज के आरम्भिक संपर्क के प्रभाव से मुझे वैदिक संध्या के मंत्रों के उच्चारण सीखने का उत्साह हुआ और तत्पश्चात् मैं विधिवत् संध्या करने लगा। कालान्तर में संध्या के मन्त्रों के अर्थ तथा उन पर लिखी गई टीकाओं को भी पढ़ने का अवसर आया पर पुरानी परम्परा के अनुरूप ही परमात्मा की शुद्ध भक्ति की प्रेरणा के अतिरिक्त संध्या के मंत्रों में मुझे कोई नवीन रस प्रतीत नहीं हुआ। समय बीतता गया और मैं भी कर्तव्य पालन की दृष्टि से संध्या करता रहा पर उसमें मेरी कोई विशेष श्रद्धा जागृत नहीं हुई। जीवन के संध्याकाल में विगत कुछ वर्षों से मुझे इस विषय में कुछ अधिक जिज्ञासा उत्पन्न हुई और मैंने स्वयं नित्यकर्म के यज्ञों में उच्चारण किये जाने वाले मंत्रों के अर्थ का अध्ययन आरंभ किया। मेरी एक मुख्य कठिनाई यह है कि मैं संस्कृत भाषा का विद्यार्थी नहीं रहा हूँ तो भी ज्यों-ज्यों इस विषय में मेरा अध्ययन बढ़ता गया मेरी जानकारी में भी प्रगति होने लगी और मैं मंत्रों में निहित आशय का मेल आधुनिक सभ्यता के व्यवहारिक रूप से मिलाने की चेष्टा में सफल होता गया। आर्य्य मित्रों के अनुरोध से मैंने संध्या तथा हवन के मंत्रों के विषय में अपने अध्ययन के सार को स्थानीय आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्संगों में प्रवचन के रूप में उपस्थित करना आरंभ किया और अंत में उन्हीं मित्रों के अनुरोध से मैंने अपने अध्ययन को लेखबद्ध करने का प्रयत्न किया। आज उसी प्रयत्न के फलस्वरूप वैदिक संध्या के मंत्रों के अर्थ तथा आशय की परिचायिका यह पुस्तक संध्या में रस लेने वाले सज्जनों की सेवा में उपस्थित की जाती है। यदि मेरे समान ही इसके द्वारा उनकी जानकारी में वृद्धि होकर कुछ उपकार हुआ तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूंगा।

स्वल्प विश्राम<br>
बांदा<br>
ता० २३-१०-१९५७

विनीत<br>
— सत्यार्थी

Scanned with CamScanner

# संध्या

अथवा

## ब्रह्मयज्ञ

**संध्या शब्द का अर्थ:**—संध्या का अर्थ है 'मिलन' 'संयोग' 'विचारना' 'ध्यान करना'।

अतः मनुष्य जिसमें परमेश्वर अथवा अपने आध्यात्मिक अभ्युदय का ध्यान करते हैं अथवा जिसमें परमेश्वर अथवा अपने आध्यात्मिक अभ्युदय का ध्यान किया जाता है उसे संध्या कहना चाहिए।

**संध्या करने का समय:**—प्रातः सायं दोनों वेलाओं में, जब रात और दिन का संयोग होता है, संध्या करना चाहिये।

**संध्या करने की विधि:**—संध्या के पूर्व जलादि से शरीर की बाह्य शुद्धि और रागद्वेषादि के त्याग से मन की शुद्धि करना चाहिये किन्तु शारीरिक शुद्धि की अपेक्षा अंतःकरण की शुद्धि अधिक लाभदायक है। अतः यदि स्नान न करना हो तो आलस्यादि दूर करने के निमित्त केवल मुंह-हाथ धो लेना पर्याप्त है।

तत्पश्चात् नीचे लिखे मंत्र से तीन बार आचमन करें। पर यदि जल न हो तो आचमन न करें।

Scanned with CamScanner

## आचमन मंत्र

ओं शन्नो देवीरभिष्टय आपोभवन्तु पीतये। शंयो रभिस्रवन्तु नः॥

शब्दार्थ

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| ओं | = | परमात्मा की कृपा से | भवन्तु | = | होवें |
| शं | = | मंगल दायक | पीतये | = | पीने के लिये |
| नः | = | हमको | शंयो | = | सुख तथा आरोग्य की |
| देवी | = | दिव्य गुण युक्त | अभिस्रवन्तु | = | सब ओर से रसती रहें |
| अभिष्टये | = | सेवा तथा यज्ञ के लिये | नः | = | हमारे लिये |
| आपः | = | जल की धाराएं | | | |

**पदार्थ :—** **ओं** परमात्मा की कृपा से **नो** हमको **देवीः** (स्त्री लिं० देवी का द्वितीया बहुवचन—छान्दस प्रयोग में द्वितीया प्रथमा के अर्थ में) दिव्य गुणों वाली **आपः** (**स्त्री** लिं० अप् का प्रथमा बहुवचन ) जल की धाराएं **अभिष्टय** (**अभिष्टये–अभिष्टि** का चतुर्थी एकवचन) सेवा तथा पूजा के लिए (और) **पीतये** (**पीति** का चतुर्थी एकवचन) पीने तथा शरीर रक्षा के लिए **शम्** मंगलदायक **भवन्तु** होवें। **शंयो** (शं+योः – यु का षष्टी एकवचन) सब प्रकार के सुख एवं आरोग्य (रोग की निवृत्ति) की (धाराएं) **नः** हमारे लिये **अभि** सब ओर से **स्रवन्तु** रसती रहें।

**भावार्थ :—** हम परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि हमको अपनी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति तथा समाजसेवा और यज्ञ के कार्यों के लिये सब प्रकार का शुद्ध तथा सुखवर्द्धक जल सुलभ होकर मंगलदायक हो। इसी प्रकार हमारी प्रार्थना है कि हमारे लिये सब प्रकार के मंगल साधन तथा आरोग्य के सुखद स्रोत निरन्तर झरते रहें।

Scanned with CamScanner

## आचमन मंत्र

**ओं शन्नो देवीरभिष्टय आपोभवन्तु पीतये । शंयो रभिस्रवन्तु नः ॥**

शब्दार्थ

| | | | |
|---|---|---|---|
| **ओं** | = परमात्मा की कृपा से | **भवन्तु** | = होवें |
| **शं** | = मंगल दायक | **पीतये** | = पीने के लिये |
| **नः** | = हमको | **शंयो** | = सुख तथा आरोग्य की |
| **देवी** | = दिव्य गुण युक्त | **अभिस्रवन्तु** | = सब ओर से रसती रहें |
| **अभिष्टये** | = सेवा तथा यज्ञ के लिये | **नः** | = हमारे लिये |
| **आपः** | = जल की धाराएं | | |

**पदार्थ :—** **ओं** परमात्मा की कृपा से **नो** हमको **देवीः** (स्त्री लिं० देवी का द्वितीया बहुवचन—छान्दस प्रयोग में द्वितीया प्रथमा के अर्थ में) दिव्य गुणों वाली **आपः** (स्त्री लिं० अप् का प्रथमा बहुवचन ) जल की धाराएं **अभिष्टय** (अभिष्टये–अभिष्टि का चतुर्थी एकवचन) सेवा तथा पूजा के लिए (और) **पीतये** (पीति का चतुर्थी एकवचन) पीने तथा शरीर रक्षा के लिए **शम्** मंगलदायक **भवन्तु** होवें । **शंयो** (शं + योः – यु का षष्टी एकवचन) सब प्रकार के सुख एवं आरोग्य (रोग की निवृत्ति) की (धाराएं) **नः** हमारे लिये **अभि** सब ओर से **स्रवन्तु** रसती रहें ।

**भावार्थ :—** हम परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि हमको अपनी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति तथा समाजसेवा और यज्ञ के कार्यों के लिये सब प्रकार का शुद्ध तथा सुखवर्द्धक जल सुलभ होकर मंगलदायक हो । इसी प्रकार हमारी प्रार्थना है कि हमारे लिये सब प्रकार के मंगल साधन तथा आरोग्य के सुखद स्रोत निरन्तर झरते रहें ।

Scanned with CamScanner

## इन्द्रिय स्पर्श मंत्र

नीचे लिखे मंत्रों से इन्द्रियों का क्रमशः पृथक पृथक स्पर्श करना चाहिये।

**ओं वाक् वाक्। ओं प्राणः प्राणः। ओं चक्षुः चक्षुः। ओं श्रोत्रम् श्रोत्रम्। ओं नाभिः। ओं हृदयम्। ओं कण्ठः। ओ शिरः। ओं बाहुभ्यां यशो बलम्। ओं करतल करपृष्ठे।**

### शब्दार्थ

| | | | |
|---|---|---|---|
| **ओं** | = परमात्मा की कृपा से | **हृदयं** | = हृदय |
| **वाक् वाक्** | = बोलने की दोनों ओर की इन्द्रियाँ | **कंठः** | = गला |
| | | **शिरः** | = शिर |
| **प्राणः प्राणः** | = साँस के दोनों नथनों की इन्द्रियां | **बाहुभ्यां** | = दोनों भुजाओं के लिए |
| | | **यशः** | = कीर्ति |
| **चक्षुः चक्षुः** | = दोनों आँखें | **बल** | = शारीरिक सामर्थ्य |
| **श्रोत्रं श्रोत्रं** | = दोनों कान | **करतल** | = हथेली |
| **नाभिः** | = नाभि प्रदेश | **करपृष्ठे** | = हाथ की पीठ के लिये |

### ओं वाक् वाक्

**( ओं मे उभौ वागेन्द्रिये स्वस्थं भवताम् )**

**अर्थः**—परमात्मा की कृपा से मेरे लिए दोनों ओर की वागेन्द्रियाँ ( कंठ में दाहिनी और बाँयीं ओर वागेन्द्रिय के जो रज्जु तन्तु होते हैं उन्हीं के झंकृत होने से वाणी के स्वर का आरंभ होता है ) स्वस्थ तथा बलिष्ट हों।

Scanned with CamScan

## ओं प्राणः प्राणः

( ओं मे उभौ प्राणेन्द्रिये स्वस्थं भवताम् )

अर्थः—परमात्मा की कृपा से मेरे लिए दोनों ओर की प्राणेन्द्रियाँ ( नासिका छिद्र ) स्वस्थ तथा बलिष्ठ हों।

## ओं चक्षुः चक्षुः

( ओं मे उभौ चक्ष्वेन्द्रिये स्वस्थं भवताम् )

अर्थः—परमात्मा की कृपा से मेरे लिए दोनों ओर की दृष्टयेन्द्रियाँ ( आँखें ) स्वस्थ तथा बलिष्ठ हों।

## ओं श्रोत्रं श्रोत्रं

( ओं मे उभौ श्रवणेन्द्रिये स्वस्थं भवताम् )

अर्थः—परमात्मा की कृपा से मेरे लिए दोनों ओर की श्रवणेन्द्रियाँ ( कान ) स्वस्थ तथा बलिष्ठ हों।

## ओं नाभिः

( ओं मे नाभि प्रदेशं स्वस्थं भवतु )

अर्थः—परमात्मा की कृपा से मेरे लिए नाभि प्रदेश ( शरीर में समीकरण तथा प्रजनन शक्ति का उत्पादन केन्द्र ) स्वस्थ तथा बलिष्ठ हो।

## ओं हृदयं

( ओं मे हृदयं स्वस्थं भवतु )

अर्थः—परमात्मा की कृपा से मेरे हृदय ( शरीर में रक्त संचालन की शक्ति का उत्पादन केन्द्र ) स्वस्थ तथा बलिष्ठ हो।

Scanned with CamScanner

## ओं कंठः

( ओं मे कंठः स्वस्थं भवतु )

अर्थः—परमात्मा की कृपा से मेरे लिए कंठ ( वागेन्द्रिय तथा घ्राणेन्द्रिय की शक्ति का उत्पादन केन्द्र) स्वस्थ तथा बलिष्ठ हो।

## ओं शिरः

( ओं मे शिरः स्वस्थं भवतु )

अर्थः—परमात्मा की कृपा से मेरे लिए शिर ( चक्षुरेन्द्रिय तथा श्रवणेन्द्रिय की शक्ति का उत्पादन केन्द्र ) स्वस्थ तथा बलिष्ठ हो।

## ओं बाहुभ्याँ यशोबलं

( ओं मे बाहुभ्यां यशोबलं भवन्तु )

अर्थः—परमात्मा की कृपा से मेरी दोनों भुजाओं के लिए, उनकी स्वस्थ अवस्था द्वारा, यश ( परोपकार जन्य) तथा बल (शारीरिक सामर्थ्य ) हो।

## ओं करतल करपृष्ठे

( ओं मे करतल कर पृष्ठे यशोबलं भवन्तु )

अर्थः—परमात्मा की कृपा से मेरे करतल(हथेली अर्थात् हाथ की ज्ञानेन्द्रिय रूपी स्पर्शशक्ति) और करपृष्ठ( हाथ की पीठ अर्थात् हाथ की कर्मेन्द्रिय रूपी ग्रहणशक्ति ) के लिए, उनकी स्वस्थ अवस्था द्वारा, यश (परोपकार जन्य) और बल(शारीरिक सामर्थ्य ) हो।

विशेष व्याख्याः—इन्द्रिय स्पर्श के इन मंत्रों में इन्द्रियों की उपयोगिता के विचार से ही उनका क्रम रखा गया है। सर्वप्रथम वागेन्द्रिय के लिए प्रार्थना की गयी है। अन्य इन्द्रियों की अपेक्षा

Scanned with CamScanner

वागेन्द्रिय हमारे जीवन के लिये अत्यधिक महत्व रखती है। बच्चे के जन्म के समय बहुधा उसकी श्वास की गति (जीवन क्रिया) उसकी वागेन्द्रिय की क्रियाशीलता से ही आरंभ होती है और बच्चे के एक बार भी चिल्ला देने अथवा रो देने से उसकी जीवित अवस्था के विषय में निश्चय हो जाता है। इसी बात को दृष्टि में रखकर कहीं-कहीं बच्चे के जन्म पर बन्दूक दागने की प्रथा है जिससे कि उसकी तेज़ आवाज़ से चौंककर बच्चा चिल्ला उठे और उसकी जीवन क्रिया आरंभ हो जाय। हमारे साधारण जीवन में भी हमको वागेन्द्रिय के महत्व का प्रमाण मिलता है। कितने ही दृष्टिहीन (सूर) मनुष्यों की बुद्धि के असाधारण विकास तथा चमत्कार के उदाहरण उपस्थित हैं पर वाग्विहीन (मूक) मनुष्यों के इस प्रकार के उदाहरण नहीं मिलते।

वाणी के बाद मनुष्य के लिये प्राण (जीवनशक्ति) का महत्व है। जीवनशक्ति की प्रचुरता से मनुष्य की अन्य इन्द्रियाँ तथा अंग स्वस्थ तथा बलिष्ट बनते हैं। इसी प्रकार इन मन्त्रों में आगे भी इन्द्रियों के महत्व के अनुसार उनके क्रम का विधान है।

इन्द्रियों के बाह्य अंगों के पश्चात् शरीर में उनके शक्ति-उत्पादन केन्द्रों के बलिष्ट होने की प्रार्थना की गई है।

भुजाओं के लिये प्रार्थना में शारीरिक बल की वृद्धि की कामना का संकेत निहित है और उसके उद्देश्य के रूप में परोपकार द्वारा यश प्राप्ति का स्थान प्रथम बताया गया है तथा शारीरिक सामर्थ्य के विकास का स्थान दूसरा है।

हाथ के विषय की प्रार्थना में दो अंग खंडों करतल तथा करपृष्ट का अलग-अलग उल्लेख है। इस विभाजन का उद्देश्य करतल द्वारा हाथ की ज्ञानेन्द्रिय रूपी स्पर्श शक्ति के विषय में और करपृष्ट द्वारा हाथ की कर्मेन्द्रिय रूपी ग्रहण शक्ति के विषय में विकास की

Scanned with CamScanner

प्रार्थना है। इन मंत्रों पर विचार करते हुए ऊपर लिखी बातों पर ध्यान देने से प्रार्थना का महत्व भली प्रकार प्रकट हो जावेगा।

भावार्थ:—इन्द्रिय - स्पर्श मन्त्रों द्वारा हम परमात्मा से अपनी विभिन्न इन्द्रियों और अंगों के स्वस्थ तथा बलिष्ट होने की प्रार्थना करते हैं और अंगों को स्पर्श करते समय हमें इसी बात का ध्यान रखना चाहिए।

## मार्जन मंत्र

नीचे लिखे मन्त्रों से विभिन्न इन्द्रियों पर मन्त्रों में वर्णित क्रम के अनुसार जल छिड़कना चाहिये।

**ओं भूः पुनातु शिरसि। ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः। ओं स्वः पुनातु कण्ठे। ओं महः पुनातु हृदये। ओं जनः पुनातु नाभ्याम्। ओं तपः पुनातु पादयोः। ओं सत्यं पुनातु पुनश्शिरसि। ओं खंब्रह्म पुनातु सर्वत्र।**

### शब्दार्थ

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| ओं भूः | = | परमात्मा का भूः रूप | ओं महः | = | परमात्मा का महः रूप |
| पुनातु | = | पवित्र करे | पुनातु | = | पवित्र करे |
| शिरसि | = | शिर में | हृदये | = | हृदय में |
| ओं भुवः | = | परमात्मा का भुवः रूप | ओं जनः | = | परमात्मा का जनः रूप |
| पुनातु | = | पवित्र करे | पुनातु | = | पवित्र करे |
| नेत्रयोः | = | दोनों आंखों में | नाभ्यां | = | नाभि में |
| ओं स्वः | = | परमात्मा का स्वः रूप | ओं तपः | = | परमात्मा का तप रूप |
| पुनातु | = | पवित्र करे | पुनातु | = | पवित्र करे |
| कंठे | = | कंठ में | पादयोः | = | दोनों पैरों में |

Scanned with CamScanner

ओं सत्यं = परमात्मा का सत्य रूप पुनातु = पवित्र करे
पुनातु = पवित्र करे सर्वत्र = सब दिशाओं में
पुनश्शिरसि = दुबारा सिर में
ओं खं ब्रह्म = परमात्मा का खंब्रह्म
अर्थात सर्वव्यापकरूप

## ओं भूः पुनातु शिरसि

अर्थः—परमात्मा का भूः रूपी ( प्राणों के समान निकटतम अंतर्व्यापी) स्वरूप मेरे शिर में (चिन्तन को) पवित्र करे।

## ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः

अर्थः--परमात्मा का भुवः रूपी (अपान के समान बहिर्गामी) स्वरूप मेरी दोनों आंखों में (दर्शन क्रिया को) पवित्र करे।

## ओं स्वः पुनातु कंठे

अर्थः—परमात्मा का स्वः रूपी ( व्यान के समान शरीरव्यापी तथा सर्वांग सुखदाई ) स्वरूप मेरे कंठ में ( भाषण क्रिया को ) पवित्र करे।

## ओं महः पुनातु हृदये

अर्थः—परमात्मा का महः रूपी (अन्न की भांति सबको एक समान हितकारी) स्वरूप मेरे हृदय में (समदर्शन अर्थात् निष्पक्ष सहानुभूति को) पवित्र करे।

Scanned with CamScanner

### ओं जनः पुनातु नाभ्यां

अर्थः—परमात्मा का जनः रूपी (सृजन) स्वरूप मेरे नाभि प्रदेश में (समीकरण तथा प्रजनन क्रिया को) पवित्र करे।

### ओं तपः पुनातु पादयोः

अर्थः—परमात्मा का तपः रूपी ( परिश्रम मूलक ) स्वरूप मेरे दोनों पैरों में (श्रम समर्पण क्रिया) को पवित्र करे।

### ओं सत्यं पुनातु पुनश्शिरसि

अर्थः—परमात्मा का सत्य रूपी ( विवेकमूलक ) स्वरूप मेरे शिर में दूसरी बार (ज्ञान संशोधन क्रिया को) पवित्र करे।

### ओं खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र

अर्थः—परमात्मा का खंब्रह्म रूपी (सर्वव्यापी तथा सर्वांतर्यामी) स्वरूप सब दिशाओं में (मेरे आचरण को) पवित्र करे।

विशेष व्याख्या:—अंगस्पर्श के मन्त्रों की भांति इन मार्जन मंत्रों में भी अंगों का क्रम विचार पूर्वक रखा गया है। सर्वप्रथम शिर में चिन्तन अर्थात् साधारण विचारों की पवित्रता के लिये प्रार्थना की गयी है। इसका कारण यह है कि मनुष्य की विचार क्रिया प्रत्येक समय उसके साथ काम करती रहती है अतः विचारों की पवित्रता के महत्व का प्रथम स्थान है। विचारों के अनन्तर वाह्य जगत के संपर्क की अनुभूति प्राप्त करने की क्रिया में आंखों का प्रमुख भाग रहता है अतः सिर के बाद आंखों की पवित्रता की मांग की गयी है। तीसरा स्थान कंठ अर्थात् भाषण की पवित्रता को दिया गया है। वाणी के द्वारा ही हम अन्य प्राणियों से अपने भावों की अदला-बदली करके उनसे

Scanned with CamScanner

घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करते हैं। कंठ के पश्चात् हृदय की पवित्रता का क्रम है जिसका तात्पर्य यह है कि हम अपने पराये का मोह छोड़ कर सबके साथ निष्कपट सहानुभूति का व्यवहार करें और केवल मीठी-मीठी बातों से ही दूसरों को प्रभावित करने का उद्योग न करें। तत्पश्चात् समीकरण तथा प्रजनन अर्थात् शरीर के पोषक तत्वों के आदान प्रदान रूपी ग्रहण तथा वितरण क्रम की पवित्र मर्यादा का उल्लेख है। उसके बाद पैरों के उदाहरण से श्रम तथा पवित्र सेवा कार्य की महत्ता का संकेत है। इन सबके बाद परमात्मा के सत्य नाम के स्वरूप से सिर की पवित्रता के लिये एक बार फिर प्रार्थना की गयी है। इसका तात्पर्य यह है कि हम पूर्ववर्णित सारी पवित्रताओं के रूप का निश्चय करने के विषय में एक बार फिर अत्यन्त सावधानी तथा विवेचना से विचार करें और अपने निर्णय में शुद्ध सत्य की जिज्ञासा का ही आश्रय लें। अंतिम मंत्र में परमात्मा से यह प्रार्थना की गयी है कि पूर्वमन्त्रों में संकेत किये गये अंगों की क्रियाओं के अतिरिक्त हम अपने अन्य सब प्रकार के साधारण आचरण में भी आवश्यक मर्यादा तथा पवित्रता का ध्यान रखें।

भावार्थ:—इन मार्जन मंत्रों के द्वारा हम परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि वह नित्य व्यवहार में आने वाले हमारे विविध अंगों की क्रिया में पवित्रता अर्थात् मर्यादापूर्ण विधि प्रदान करे। इसी बात को ध्यान में रखकर हमें मंत्रों में वर्णित अपने विविध अंगों पर जल छिड़कना चाहिये।

### अंग स्पर्श तथा मार्जन क्रम विधि का रहस्य

अंग स्पर्श की विधि मार्जन विधि से पूर्व रक्खी गई है इसका अभिप्राय यह है कि मनुष्य के अंगों के स्वस्थ तथा बलिष्ट होकर क्रियाशील होने पर उनके पवित्र व्यवहार के विषय में ध्यान देने की

Scanned with CamScanner

आवश्यकता है। वस्तुतः अंग-स्पर्श-विधि अंगों के शारीरिक विकास के विषय की प्रार्थना है और मार्जन विधि में अंगों के आचरण में आध्यात्मिक पवित्रता का दृष्टिकोण निहित है। जिस प्रकार भवन के निर्माण के पश्चात् उसकी सर्वांग सफ़ाई और सजावट का अवसर आता है उसी प्रकार अंगस्पर्श द्वारा अंगों के बलिष्ट होने की प्रार्थना के बाद मार्जन मंत्रों द्वारा उनके आचरण की पवित्रता की प्रार्थना का क्रम है। यह बात भी विचारणीय है कि अंगस्पर्श तथा मार्जन के मंत्रों में अंगों का क्रम एक समान ही क्यों नहीं रक्खा गया है? इसका रहस्य भवन-निर्माण के उदाहरण पर एक बार फिर विचार करने से भली भाँति समझ में आ जावेगा। भवन का निर्माण नीचे से आरम्भ होता है पर उसके निर्माण के पश्चात् उसकी सर्वांग सफ़ाई का काम ऊपर से आरम्भ किया जाता है। इसी प्रकार हमारी इन्द्रियों की स्वस्थ अवस्था के आधार पर हमारे जीवन में उनके महत्व का जो क्रम है वह उनके महत्व के उस क्रम से भिन्न है जो उनके पवित्र तथा मर्यादापूर्ण व्यवहार के आधार पर स्थिर किया गया है। अतः अंगस्पर्श के मन्त्रों तथा मार्जन के मंत्रों में भिन्न भिन्न अंगों के उल्लेख का क्रम एक दूसरे के समान रखना युक्ति-संगत नहीं पाया गया।

## प्राणायाम मन्त्र

**ओं भूः। ओं भुवः। ओं स्वः। ओं महः। ओं जनः। ओं तपः। ओं सत्यम्।**

इन मंत्रों के आशय का ध्यान करते हुए तीन बार प्राणायाम करे।

Scanned with CamScanner

## शब्दार्थ

ओं भूः = परमात्मा की कृपा से उसका भूः रूप

ओं भुवः = परमात्मा की कृपा से उसका भुवः रूप

ओं स्वः = परमात्मा की कृपा से उसका स्वः रूप

ओं महः = परमात्मा की कृपा से उसका महः रूप

ओं जनः = परमात्मा की कृपा से उसका जनः रूप

ओं तपः = परमात्मा की कृपा से उसका तप रूप

ओं सत्यं = परमात्मा की कृपा से उसका सत्य रूप

### ओं भूः

अर्थः—परमात्मा की कृपा से उसके भूः रूपी अंतस्थ स्वरूप की अनुकूलता मेरी जीवनशक्ति को सबल करे।

### ओं भुवः

अर्थः—परमात्मा की कृपा से उसके भुवः रूपी वहिर्गामी स्वरूप की अनुकूलता मेरी जीवनशक्ति को सबल करे।

### ओं स्वः

अर्थः—परमात्मा की कृपा से उसके स्वः रूपी सर्वांगव्यापी स्वरूप की अनुकूलता मेरी जीवनशक्ति को सबल करे।

### ओं महः

अर्थः—परमात्मा की कृपा से उसके महः रूपी हृदय सम्बन्धी स्वरूप की अनुकूलता मेरी जीवनशक्ति को सबल करे।

Scanned with CamScanner

**ओं जनः**

अर्थः—परमात्मा की कृपा से उसके जनः रूपी नाभि प्रदेश सम्बन्धी स्वरूप की अनुकूलता मेरी जीवनशक्ति को सबल करे।

**ओं तपः**

अर्थः—परमात्मा की कृपा से उसके तपः रूपी ऊरु (जंघा) सम्बन्धी स्वरूप की अनुकूलता मेरी जीवनशक्ति को सबल करे।

**ओं सत्यं**

अर्थः—परमात्मा की कृपा से उसके सत्यं रूपी शिर सम्बन्धी स्वरूप की अनुकूलता मेरी जीवनशक्ति को सबल करे।

विशेष व्याख्याः—जीवनशक्ति को सबल बनाने के लिए प्राणायाम की क्रिया का विधान है पर इस प्रयोजन के लिए प्राणायाम की क्रिया के साथ हमारे विचारों और हमारे दैनिक आचरण को भी मर्यादित होने की आवश्यकता है। यदि हमारे विचार और हमारा आचरण शुद्ध नहीं है तो केवल प्राणायाम की क्रिया से हमारी जीवन-शक्ति प्रबल नहीं बन सकती। योगशास्त्र में योगाभ्यास के लिए आठ अंग निर्धारित किये गए हैं और उनमें 'यम' 'नियम' और 'आसन' के अभ्यास के बाद ही 'प्राणायाम' का क्रम है। यमों द्वारा 'अहिंसा' 'सत्य' 'अस्तेय' 'ब्रह्मचर्य' और 'अपरिग्रह' के अभ्यास का आदेश है और नियमों द्वारा 'शौच' 'सन्तोष' 'तप' 'स्वाध्याय' और 'ईश्वर प्रणिधान' की शिक्षा का निर्देश है। अतः संध्या करते

Scanned with CamScanner

समय प्राणायाम की क्रिया के साथ हम परमात्मा से प्रार्थना करते हैं, अथवा दूसरे शब्दों में स्वयं संकल्प करते हैं, कि प्राणायाम के मंत्रों में वर्णित उसकी दैवी विभूतियों का अनुसरण करते हुए हम अपना जीवन सबल बनाने में समर्थ हों। प्राणायाम के मन्त्रों में परमात्मा के 'भूः' 'भुवः' 'स्वः' 'महः' जनः' 'तपः' और 'सत्यं' नामक स्वरूपों का उल्लेख है। उनमें से 'भूः' 'भूवः' और 'स्वः' वैदिक साहित्य की तीन प्रख्यात व्याहृतियाँ हैं। उनके अर्थ भिन्न-भिन्न प्रसंगों के अनुसार कई रूप से किये गये हैं। इन्हीं के साथ अन्य ऋषियों ने 'महः' को चौथी व्याहृति माना है और उसका भी अर्थ अनेक प्रकार से किया है। 'जनः' 'तपः' और 'सत्यं' स्वरूपों का अर्थ स्पष्ट है। अब हमें इन स्वरूपों के आशय पर बिचार करना है।

'भूः' से प्राणवायु सेवन और 'भुवः' से अपान वायु निष्कासन की स्वाभाविक क्रिया की ओर संकेत है अर्थात् यह कि हमारी श्वासोच्छ्वास की स्वाभाविक क्रिया का रूप जितना दीर्घ होना चाहिये हम उसी मर्यादा के पालन करने का ध्यान रखें। उथली श्वासोच्छ्वास मन्द स्वास्थ्य का लक्षण है।

'स्वः' स्वरूप का संकेत व्यान वायु से है अर्थात् यह कि जिस प्रकार व्यान वायु शरीर के समस्त अंगों में व्याप्त होकर उनका समान रूप से संरक्षण करता है उसी प्रकार हम भी अपनी जीवनशक्ति को सबल बनाने के लिए अपने शरीर के समस्त अवयवों की उन्नति का ध्यान रक्खें। शरीर के कुछ विशेष अंगों के बिकास के ऊपर अधिक ध्यान देने और शेष अंगों की अवहेलना करने से हमारी जीवनशक्ति

Scanned with CamScanner

सबल नहीं हो सकती। आजकल हमारे देश के पढ़े लिखे लोगों में अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये शारीरिक श्रम करने की रुचि कम होती जाती है और स्वास्थ्य रक्षा के विचार से कुछ विशेष अंगों का व्यायाम कर लेना अथवा खेलकूद के कुछ प्रचलित रूपों में भाग ले लेना काफी समझा जाता है। किन्तु इस प्रकार हमारे शरीर के समस्त अवयवों में जीवनशक्ति का विकास समान रूप से नहीं हो पाता। अतः प्राणायाम के मन्त्र में परमात्मा के 'स्वः' स्वरूप के अनुसरण से शरीर के समस्त अंगों के विकास द्वारा जीवनशक्ति को सबल बनाने की इच्छा है।

परमात्मा के 'महः' नामक स्वरूप का सम्बन्ध हमारे शरीर में हृदय से जोड़ा गया है और प्राणायाम मन्त्र में उसका संकेत रक्त के स्वाभाविक संचालन की व्यवस्था से है। आधुनिक सभ्यता में रक्तचाप का स्वास्थ्य-दोष ( Blood Pressure ) पढ़े लिखे लोगों में बढ़ता हुआ देखा जाता है। उसका एक कारण यह है कि हम अपने शरीर की कुछ शक्तियों - मस्तिष्क हृदय इत्यादि - पर दूसरी शक्तियों की अपेक्षा अधिक भार डालते हैं और इस प्रकार हमारी शक्तियों का संतुलन बिगड़ कर स्वाभाविक जीवनशक्ति का ह्रास होता रहता है। अतः प्राणायाम के मन्त्र में परमात्मा के 'महः' रूपी स्वरूप के गुणों के अनुसरण के द्वारा हम अपनी शारीरिक शक्तियों के उपयोग के स्वाभाविक अनुपात का पालन करके अपनी जीवनशक्ति बढ़ाने का विचार करते हैं।

परमात्मा के 'जनः' नाम के स्वरूप का संकेत शरीर की जीवन शक्ति के पोषण सम्बन्धी तत्वों के संग्रह तथा वितरण रूपी पाचन तथा प्रजनन की क्रियाओं की स्वाभाविक व्यवस्था की ओर है। भोजन के लिये उपयोगी पदार्थों के विषय में अपने विवेक का यथोचित

Scanned with CamScanner

प्रयोग न कर पाने से बहुधा हमारा स्वास्थ्य दूषित हो जाता है और इसी प्रकार अमर्यादित विषय-भोग का जीवन व्यतीत करने से हम निर्बल हो जाते हैं। अतः हम परमात्मा की 'जनः' नामक विभूति के अनुसरण करने का संकल्प करके और खाने पीने तथा ब्रह्मचर्य की मर्यादा के विषय में सावधान रहकर अपनी जीवनशक्ति को सबल बनाने की कामना करते हैं।

परमात्मा के 'तपः' नाम के स्वरूप का संकेत हमारी शारीरिक परिश्रम करने तथा शीतोष्ण इत्यादि सहन करने की क्षमता बढ़ाने की ओर है। शीतोष्ण प्रभृति द्वन्द्वों के वेगों को सहन करने की अपनी क्षमता को बढ़ाने का अभ्यास हमारी जीवन शक्ति को सबल बनाने में सहायक होता है और इसके विपरीत अधिक शारीरिक सुख-सुविधा का जीवन हमारी जीवनशक्ति को निर्बल बना देता है। अतः हम परमात्मा की 'तपः' विभूति का अनुसरण करते हुए शीतोष्ण सदृश द्वन्द्वों के वेगों को सहन करने की मर्यादा का अभ्यास करते रहकर अपनी जीवनशक्ति को सबल बनाने की इच्छा करते हैं। 'सत्य' का संकेत विवेचन शक्ति की ओर है। शारीरिक व्यापार की ऊपर वर्णित क्रियाओं का पालन करने में हमें किसी परंपरागत परिपाटी का अन्धानुकरण करना उचित नहीं है प्रत्युत अपने विवेक का आश्रय लेकर अपने आचरण के लिये जो विधि उचित जान पड़े उसी का अनुपालन करना चाहिये। इसी लक्ष्य को अपने सम्मुख रखकर हम परमात्मा की 'सत्य' विभूति का अनुसरण करते हुए अपनी जीवन शक्ति को सबल बनाने की इच्छा करते हैं।

भावार्थ :— प्राणायाम क्रिया से हमारा मुख्य उद्देश्य अपनी जीवनशक्ति को सबल बनाना है। पर इस प्रयोजन की सिद्धि के लिये प्राणायाम की क्रिया के अतिरिक्त हमें अपने साधारण आचरण

Scanned with CamScanner

को भी यथेष्ट रूप से मर्यादित करने की आवश्यकता है और इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये हमें परमात्मा के जिन गुणों का अनुकरण करना चाहिए उनका उल्लेख प्राणायाम के मंत्रों में किया गया है। अतः प्राणायाम करते हुए हमें इन मंत्रों के आशय पर ध्यान देना चाहिए।

## अघमर्षण मंत्र

**ओं ऋतंच सत्यंचाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः॥**

शब्दार्थ

| | | | |
|---|---|---|---|
| **ओं** | = परमात्मा की कृपा से | **अभिइद्धात् तपसः** | = अत्यन्त देदीप्यमान तेज से |
| **ऋतं** | = व्यापक नियमों का रूप | **अधि+अजायत्** | = ऊपर से प्रकट हुआ |
| **च** | = और | **तत्** | = उससे |
| **सत्यं** | = मर्यादित नियमों का रूप | **रात्रि+अजायत्** | = रात्रि उत्पन्न हुयी |
| | | **तत्** | = उससे |
| **च** | = और | **समुद्रः अर्णवः** | = प्रक्षुब्ध समुद्र |

**पदार्थः**—**ओं** परमात्मा की कृपा से (उसके) **अभि** अधिकता से **इद्धात् तपसः** देदीप्यमान तेज से—अनन्त सामर्थ्य से—**ऋतंच सत्यंच** ( सृष्टि रचना के ) व्यापक और मर्यादित नियमों का सक्रिय रूप **अधिअजायत** ऊपर से ( बीज रूप से ) प्रकट हुआ **ततः** उससे **रात्रि** रात्रि ( प्रकृति की महारात्रि ) का ( सुषुप्त ) रूप **अजायत** उत्पन्न हुआ ( और ) **ततः** उससे **समुद्रअर्णवः** प्रकृति का—ब्रह्मदिन का गतिशील परमाणुओं से परिपूर्ण देशरूपी—प्रक्षुब्ध समुद्र ( उत्पन्न हुआ )।

Scanned with CamScanner

**समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत । अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतोवशी ॥**

शब्दार्थ

| | | | |
|---|---|---|---|
| **समुद्रात् अर्णवात्** | =प्रक्षुब्ध समुद्र से | **अहोरात्राणि** | =दिन और रात्रियों को |
| **अधि** | =ऊपर से | **विदधत्** | =नियंत्रित किया है |
| **संवत्सरः** | =वर्ष (काल की कल्पना) | **विश्वस्य** | =विश्व के |
| **अजायत** | =उत्पन्न हुई | **मिषतः** | =पलक भाँजते-बिना उद्योग के |
| | | **वशी** | =नियंत्रणकर्ता ने |

पदार्थः—**समुद्रात् अर्णवात्** प्रक्षुब्ध परमाणुओं से परिपूरित देश की सक्रियता द्वारा **संवत्सर** काल की कल्पना **अधि** ऊपर से ( बीज रूप से ) **अजायत** उत्पन्न हुई । **अहोरात्राणि** उपर्युक्त ब्रह्मादिनों और ब्रह्मरात्रियों को **विश्वस्य वशी** ( वशी—वशिन का प्रथमा एकवचन ) विश्व के नियंत्रण-कर्ता ( परमात्मा ) ने **मिषतः** ( पलक भाँजते अर्थात् बिना उद्योग के ) स्वभावतः **विदधत्** नियंत्रित किया है ।

**सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् । दिवंच पृथिवीं-चान्तरिक्षमथो स्वः ॥**

| | | | |
|---|---|---|---|
| **सूर्याचन्द्रमसौ** | (सूर्य+चन्द्रमसौ) =सूर्य चन्द्रमा दोनों को - सूर्य चन्द्रमा संबंधी संगठन को | **च** | = और |
| | | **पृथिवीं** | =पृथ्वी लोक को |
| | | **च** | =और |
| | | **अन्तरिक्षं** | =अंतरिक्ष लोक को |
| **यथापूर्वं** | =पहले के समान | **अथो** | =उसके बाद |
| **अकल्पयत्** | =व्यवस्थित किया | **स्वः** | =(स्वतंत्र)स्वर्गलोक को |
| **दिवं** | =द्यु लोक को | | |

Scanned with CamScanner

पदार्थः—धाता सृजनकर्ता (परमात्मा) ने सूर्य्याचन्द्रमसौ (सूर्य्या = सूर्य) सूर्य और चन्द्र के समान दो कोटि के अन्योन्याश्रित, केन्द्रीभूत तथा परिधि दिग्वर्ती, ग्रहों के सम्बन्ध के नियमों को यथापूर्व पहले (की सृष्टि) के समान अकल्पयत् व्यवस्थित किया। (उसके बाद) दिवंच द्यौलोक और पृथिवींच पृथ्वीलोक और अन्तरिक्षं अन्तरिक्ष लोक अथो (और) उसके बाद स्वः (सूर्य और ध्रुव तारे के बीच के मध्यवर्ती स्वतन्त्र) स्वर्ग लोक को (संपादित किया है)।

विशेष व्याख्या :— 'अघमर्षण' शीर्षक के आशय का उसके मंत्रों के विषय से क्या सम्बन्ध है, पहले हमें इस प्रश्न पर विचार करना है। अघमर्षण का अर्थ है 'पाप का संभालना, मर्दन करना'। अघमर्षण मंत्रों में इस बात का वर्णन है कि परमात्मा ने सृष्टि की उत्पत्ति कैसे की। अन्य विद्वानों तथा टीकाकारों ने अघमर्षण शीर्षक का हेतु उसके अंतर्गत मंत्रों से इस प्रकार जोड़ने की चेष्टा की है कि परमात्मा की महत्ता और सामर्थ्य के दिग्दर्शन सम्बन्धी पाठ तथा विचार से, जो इन मंत्रों में उपस्थित है, मनुष्य के पापों का निवारण हो जाता है। इस विषय में यह प्रश्न उठता है कि परमात्मा की महत्ता और सामर्थ्य का वर्णन वेद के अन्य अनेक मंत्रों में विद्यमान है पर पापों के निवारण करने के उद्देश्य को लेकर सृष्टि उत्पत्ति विषयक अघमर्षण शीर्षक इन्हीं तीन मंत्रों के पाठ को क्यों निर्धारित किया गया है। अतः हमें इस विषय पर अन्य दृष्टिकोण से भी विचार करने की आवश्यकता है।

इन मंत्रों में सबसे प्रथम 'ऋत' और 'सत्य' की उत्पत्ति का वर्णन है। ऋत का अर्थ दैविक नियम अर्थात् वेदों का ज्ञान है। तदन्तर रात्रि (प्रकृति की महारात्रि) की उत्पत्ति का उल्लेख है। इससे यह सिद्ध हुआ कि सृष्टि की रचना आरम्भ करने पर सर्वप्रथम परमात्मा ने उसकी व्यवस्था के सिद्धान्त (वेदोक्त ज्ञान में निहित

Scanned with CamScanner

दैविक नियम) बनाये। अतः यदि हमें पाप - कर्म करने की दोषपूर्ण प्रणाली - से बचना है तो हम भी परमात्मा की इस क्रिया - शैली का अनुसरण करें और अपने जीवन के मार्ग-प्रदर्शन के लिए कर्म करने के पहले उनके नियंत्रणार्थ मोटे नियम बना लेवें और तदनुसार आचरण करें। यदि हम ऐसा न करके, और अपने जीवन के लिए आवश्यक सिद्धान्तों के पालन का कोई ऐसा लक्ष्य न रखकर जो किसी प्रकार समाज तथा लोक हित के विरुद्ध न हो, मनमाने ढंग से तात्कालिक प्रेरणाओं के वश होकर कर्म करने की शैली का अनुसरण करेंगे तो हमें पाप कर्मों का भागी होकर कष्ट सहना पड़ेगा। इसी नियम को इन मंत्रों में आगे चलकर दूसरी बार फिर स्पष्ट किया गया है। सृष्टि की आरंभिक रचना हो जाने पर और लोक लोकान्तरों का निर्माण करने के पूर्व परमात्मा ने इन लोक-मंडलों के संगठन की व्यवस्था के नियम (सापेक्ष सिद्धान्त) पूर्वानुसार बनाये जिनको कि मंत्र में 'सूर्य्याचन्द्रमसौधाता यथापूर्वमकल्पयत्' के पाठ से दर्शाया गया है। सूर्य और चन्द्र केवल दो ग्रहों (केन्द्रीय तथा परिधि दिग्वर्ती दूरतम ग्रह) के संक्षिप्त उल्लेख में मंडल के समस्त मध्यवर्ती ग्रहों के पारस्परिक सम्बन्ध के संगठन का संकेत निहित है। लोक-मंडलों के संगठन के नियम बनाने के बाद ही परमात्मा ने 'द्यौलोक' 'पृथ्वी लोक' 'अन्तरिक्ष लोक' तथा 'स्वः लोक' (सूर्योपरि - सूर्य तथा ध्रुव प्रदेश के मध्य स्थित - स्वतंत्र लोक) की रचना की। अतः परमात्मा की इस क्रिया-शैली से शिक्षा लेकर हमारा कर्तव्य है कि हम भी अपने जीवन के दिग्दर्शन के लिए ऐसे निश्चित सिद्धान्त बना कर जो किसी प्रकार समाज अथवा लोकहित के विरुद्ध न हों, अपने दैनिक आचरण का पालन करते हुए कर्म करने की दूषित शैली (पाप) से बचते रहें। यही अघमर्षण शीर्षक मंत्रों के पाठ का मुख्य उद्देश्य है।

Scanned with CamScanner

भावार्थ :— परमात्मा ने सृष्टि का आरंभ करते हुए सर्वप्रथम अपने देदीप्यमान तेज से सृष्टि-व्यवस्था के आधिदैविक तथा आधिभौतिक नियम बीजरूप से प्रकट किये। इन नियमों के आधार पर प्रकृति की आरंभिक निश्चेष्ट अवस्था का रूप - महारात्रि - उत्पन्न हुआ और उस रूप से प्रकृति का ब्रह्मदिन नामक सक्रिय रूप (प्रकृति के प्रक्षुब्ध परमाणुओं से परिपूरित सागर रूपी देश) उत्पन्न हुआ। इस प्रक्षुब्ध परमाणुओं से परिपूरित सागर रूपी देश से बीजरूप में काल की कल्पना का सूत्रपात हुआ। इसी प्रकार की रचना प्रणाली से विश्व के नियन्ता परमात्मा ने सर्वदा अपने स्वभाव से ही ब्रह्मदिनों और ब्रह्मरात्रियों के निर्माण की व्यवस्था की। ऊपर वर्णन किये हुए प्रकृति के मूल रूप, तथा देश और काल की आरंभिक उत्पत्ति के बाद, एवं लोकलोकान्तरों के निर्माण करने के पहले, पूर्व सृष्टि रचना की शैली के अनुसार ही सृजनकर्ता परमात्मा ने लोक-मंडलों के संगठन की व्यवस्था की और केन्द्रीय, मध्यवर्ती तथा परिधि दिग्वर्ती ग्रहों के पारस्परिक सम्बन्ध के नियम निर्धारित किये और उन्हीं नियमों के अन्तर्गत द्यौलोक, पृथिवीलोक, अंतरिक्षलोक तथा स्वतंत्र स्वः लोक की रचना की।

## आचमन मंत्र

अघमर्षण मंत्र के बाद आचमन मंत्र से तीन बार आचमन करे।

**ओं शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभिस्रवन्तु नः ॥**

## मनसा परिक्रमा मंत्र

प्रार्थी इन मंत्रों के पाठ से विभिन्न दिशाओं का आधार लेकर सृष्टि की दैवी व्यवस्था का दर्शन करता है और उसमें अपनी श्रद्धा

Scanned with CamScanner

प्रकाशित करते हुए सामाजिक व्यवस्था के लिए उपयुक्त प्रेरणा ग्रहण करता है।

**प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान द्वेष्टियं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।**

### शब्दार्थ

| | | | |
|---|---|---|---|
| प्राची दिक् | = सामने की (पूर्व) दिशा | रक्षितृभ्यो नमः | = रक्षक स्वरूपों के लिये नमस्कार |
| अग्नि | = परमात्मा की ज्ञान विभूति | एभ्यो इषुभ्यो नमः | = इनके इषु रूपी साधनों के लिये नमस्कार |
| अधिपति | = स्वामी | अस्तु | = होवे |
| असितः रक्षिता | = तिमिर (अज्ञान) से रक्षा करने वाली | यः | = जो |
| आदित्याः इषवः | = आदित्य वाची विद्वानों के तीर (साधनों) वाली | अस्मान | = हमको (हमसे) |
| | | द्वेष्टि | = द्वेष करता है |
| | | यं | = जिसको (जिससे) |
| तेभ्यो नमः | = उनके लिये नमस्कार | वयं | = हम |
| | | द्विष्मः | = द्वेष करते हैं |
| अधिपतिभ्यो नमः | = अधिपति स्वरूपों के लिए नमस्कार | तम | = उसको |
| | | वः जम्भे | = आपके दाढ़ों में |
| | | दध्मः | = धरते हैं |

Scanned with CamScanner

पदार्थः—अग्नि परमात्मा की अग्निवाची विभूति प्राची दिग् अधिपतिः पूर्व दिशा की अधिपति (और) असितः रक्षिता तिमिर - अज्ञान - से रक्षा करने वाली, आदित्या: इषवः आदित्य रूपी विद्वानों के साधनों वाली।

तेभ्यो नमो उन सब (उस प्रकार की दैवी विभूतियों )के लिए नमस्कार अधिपतिभ्यो नमो अधिपति स्वरूपों के लिये नमस्कार रक्षितृभ्यो नमः रक्षक स्वरूपों के लिये नमस्कार (और) एभ्यो इषुभ्यो नम अस्तु इन तीर (साधन) रूपी स्वरूपों के लिए नमस्कार होवे।

योऽस्मान द्वेष्टि जो हमसे द्वेष करता है (अथवा) यं वयं द्विष्मः जिससे हम द्वेष करते हैं तम उसको वो जम्भे आपके डाढ़ों (सुधार रूपी दबाव) में दध्मः हम रखते हैं।

व्याख्या:—परमात्मा की अग्नि वाची ज्ञान रूपी विभूति पूर्व दिशा की अधिपति के रूप में विद्यमान हो रही है और अज्ञान निवारक का रूप धारण कर आदित्य विद्वानों के साधनों से क्रियाशील होती हुई नित्य हमारे साक्षात अनुभव तथा संपर्क में आने वाली है। ('इषवः' इषु का बहुवचन है और इषु का साधारण अर्थ 'तीर' है पर यहाँ मंत्र में उसके अर्थ 'दूरस्थ पदार्थों से सम्पर्क स्थापित कराने वाला साधन' करने से मंत्र का अर्थ अधिक सुन्दरता से स्पष्ट हो जाता है)।

विभिन्न दिशाओं के साथ वर्णित परमात्मा की इन विभूतियों को नमस्कार होवे अर्थात् हम उन विभूतियों की व्यवस्था तथा नियमों के अनुसरण करने का संकल्प करते हैं। इन विभूतियों के अधिपति स्वरूपों को नमस्कार होवे, उनके रक्षक स्वरूपों को नमस्कार होवे और उनके (हमारे साथ संपर्क स्थापित करने वाले ) इन साधन स्वरूपों को नमस्कार होवे।

Scanned with CamScanner

जो हमसे, अर्थात् परमात्मा की उपर्युक्त विभूतियों का अनुसरण करने वाली समाज की सामूहिक व्यवस्था से, द्वेष करता है अर्थात् जनहित विरोधी कार्य करता है—अथवा जिससे हम, उपर्युक्त समाज के सदस्य, द्वेष करते हैं अर्थात् समाज के अनहित की आशंका करते हैं—उसको हम आपकी (विभिन्न विभूतियों की) सुधार रूपी दबाव की व्यवस्था में रखते अर्थात् सौंपते हैं जिससे कि आप अपनी दयालुता से ऐसे प्राणियों के स्वभाव तथा आचरण में आवश्यक परिवर्तन कर देव।

**दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥**

शब्दार्थ

दक्षिणा = दक्षिण

दिग् = दिशा

इन्द्रः = परमात्मा की इन्द्र वाची विभूति

अधिपतिः = स्वामी

तिरश्चिराजी रक्षिता = टेढ़ी लकीर (चाल) से रक्षा करने वाली

पितर इषवः = पितरों के तीरों (परिपाटी) वाली

मंत्र के शेष दो खंडों के अर्थ प्रथम मंत्र के अनुसार

पदार्थ :— इन्द्र परमात्मा की इन्द्र वाची विभूति दक्षिणादिग् अधिपतिः (दक्षिणा = दक्षिण) दक्षिण दिशा की अधिपति तिरश्चिराजी रक्षिता टेढ़ी लकीर (चाल) से रक्षा करने वाली पितर इषवः पूर्वजों की परिपाटी रूपी साधन वाली।

मंत्र के शेष दो खंडों के पदार्थ पूर्व मंत्र के अनुसार..

व्याख्या :— परमात्मा की इन्द्रवाची, दिव्य शक्तियों का नियंत्रण करने वाली, विभूति दक्षिण दिशा के अधिपति के रूप में विद्यमान हो रही है और टेढ़ी चाल से रक्षा करने वाली का रूप धारण कर पूर्वजों की नैतिक परिपाटी के साधनों से क्रियाशील होती हुई नित्य हमारे साक्षात अनुभव तथा सम्पर्क में आने वाली है।

मंत्र के शेष दो खंडों की व्याख्या पूर्व मंत्र के अनुसार

**प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥**

शब्दार्थ

प्रतीची दिग् = पश्चिम दिशा
वरुणः = परमात्मा की वरुणवाची विभूति
अधिपतिः = स्वामी
पृदाकुः रक्षिता = अजगर (सदृश साधन हीनता) से रक्षा करने वाली
अन्नमिषवः = भोजन सामग्री रूपी तीरों (साधनों) वाली

मंत्र के शेष दो खंडों के शब्दों के अर्थ प्रथम मंत्र के अनुसार

Scanned with CamScanner

पदार्थ :—वरुण परमात्मा की वरुण वाची विभूति प्रतीची दिग्अधिपतिः पश्चिम दिशा की अधिपति पृदाकुः रक्षिता अजगर (सदृश साधनहीनता) से रक्षा करने वाली, अन्नं इषवः भोजन सामग्री रूपी साधनों वाली ।

मंत्र के शेष दो खंडों का पदार्थ पहले मंत्र के अनुसार

व्याख्या :—परमात्मा की वरुण वाची, आर्द्रता अर्थात् वात्सल्य रूपी विभूति पश्चिम दिशा की अधिपति के रूप में विद्यमान हो रही है। और प्राणियों की अजगर सदृश साधनहीनता से रक्षा करने वाली का रूप धारण कर शारीरिक आवश्यकता पूर्ति रूपी भोजन सदृश साधनों से क्रियाशील होती हुई नित्य हमारे साक्षात अनुभव तथा सम्पर्क में आने वाली है ।

मंत्र के शेष खंडों की व्याख्या पहले मंत्र के अनुसार

**उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताशनिरिषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽस्मान द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥**

शब्दार्थ

उदीची दिक् = उत्तर दिशा
सोमः = परमात्मा की सोमवाची विभूति
अधिपतिः = स्वामी
स्वजो रक्षितः = स्वतः उत्पन्न विकारों से रक्षा करने वाली
अशनि इषवः =बिजली (प्रकाश) रूपी तीरों(साधनों)वाली ।

मंत्र के शेष दो खंडों के शब्दों का अर्थ प्रथम मंत्र के अनुसार

Scanned with CamScanner

पदार्थः—सोमः परमात्मा की सोम वाची विभूति उदीची दिक् अधिपतिः उत्तर दिशा की अधिपति स्वजो रक्षिता अपने आप ( कल्पना से ) उत्पन्न होने वाले विकारों से रक्षा करने वाली, अशनि इषवः भिन्न प्रकार की दो विद्युत धाराओं के संबंध से उत्पन्न प्रकाश रूपी साधनों वाली

मंत्र के शेष दो खंडों के अर्थ प्रथम मंत्र के अनुसार

व्याख्याः—परमात्मा की सोमवाची, आत्मप्रकाश रूपी विभूति, उत्तर दिशा की अधिपति के रूप में विराजमान हो रही है और कल्पना से अपने आप उत्पन्न होने वाले विकारों से रक्षा करनेवाली का रूप धारण कर बिजली के दो प्रकार के धारावाही तारों की भाँति, धन से ऋण की ओर बहने के लिए सम्पर्क जोड़ने पर उत्पन्न प्रकाश के समान, त्यागधारा की क्रियाशीलता से उत्पन्न मानसिक शांति के रूप में नित्य हमारे साक्षात् अनुभव तथा सम्पर्क में आने वाली है।

मंत्र के शेष दो खंडों की व्याख्या पहले मंत्र के अनुसार

**ध्रुवादिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षितावीरुध इषवः। तेभ्योनमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टियं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥**

ई वैदिक पुस्तकालय मुम्बई
आचार्य धर्मपाल आर्य

Scanned with CamScanner

| | | | |
|---|---|---|---|
| ध्रुवादिक् | = (ध्रुव का स्त्री लिंग) नीचे (पृथ्वी की ओर) की दिशा | अधिपतिः | =स्वामी |
| | | कल्माषग्रीवः रक्षिता | =चितकबरी गरदन से रक्षा करने वाली |
| | | वीरुध इषवः | =पौधों तथा वृक्षों के तीरों (साधनों वाली |
| विष्णु | = परमात्मा की विष्णु वाची विभूति | | |

**मंत्र के शेष खंडों के शब्दों का अर्थ प्रथम मंत्र के अनुसार ।**

**पदार्थः—विष्णु** परमात्मा की विष्णु वाची विभूति **ध्रुवादिग् अधिपतिः** नीचे की दिशा की अधिपति, **कल्माषग्रीवो रक्षिता** चितकबरी ( शुद्ध तथा अशुद्ध, मिश्रत वायु) गर्दन (पृथ्वी तथा अंतरिक्ष के बीच का - वायुस्तम्भ) से रक्षा करने वाली **वीरुध इषवः** हरित पौधों तथा वृक्षों के साधन वाली ।

**मंत्र के शेष दो खंडों का पदार्थ पहले मंत्र के अनुसार**

**व्याख्या:—**परमात्मा की विष्णुवाची, सर्वरक्षक विभूति दृढ़—नीचे की—दिशा की अधिपति के रूप में विद्यमान हो रही है और प्राणियों के मुंह से निकली सांस से दूषित वायु मंडल से रक्षा करने वाली का रूप धारण कर हरित पौधों तथा वृक्ष रूपी साधनों से क्रियाशील होती हुई नित्य हमारे साक्षात् अनुभव तथा सम्पर्क में आने वाली है ।

**मंत्र के शेष दो खंडों की व्याख्या पहले मन्त्र के अनुसार**

Scanned with CamScanner

**ऊर्ध्वा दिग्बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रोरक्षिता वर्षमिषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽस्मान द्वेष्टियं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥**

शब्दार्थ

**ऊर्ध्वा दिग्** =ऊपर की दिशा

**बृहस्पति** =परमात्मा की बृहस्पति वाची विभूति

**अधिपतिः** =स्वामी

**श्वित्ररक्षिता** =(प्रकृतिवर्ती) कोढ़ से रक्षा करने वाली

**वर्षम् इषवः** = वर्षा के तीरों (साधनों) वाली

**मन्त्र के शेष दो खन्डों के शब्दों का अर्थ प्रथम मन्त्र के अनुसार ।**

**पदार्थः—बृहस्पति** परमात्मा की बृहस्पति वाची विभूति **ऊर्ध्वादिग् अधिपतिः** ऊपर की दिशा की अधिपति, **श्वित्रो रक्षिता** (प्रकृति व्यापी) कोढ़ से रक्षा करने वाली **वर्षमिषवः** वर्षा के साधनों वाली ।

**मंत्र के शेष दो खंडो के पदार्थ पहले मंत्र के अनुसार**

**व्याख्या:—**परमात्मा की बृहस्पतिवाची, देवों में गुरुदेव रूपी, विभूति ऊपर की दिशा की अधिपति के रूप में विद्यमान हो रही है और ग्रीष्म के प्रभाव से उत्पन्न प्रकृति व्यापी कान्ति तथा वर्णविहीन शुष्कता रूपी कोढ़ से रक्षा करने वाली का रूप धारण कर वर्षा रूपी साधनों से क्रियाशील होती हुई नित्य हमारे साक्षात् अनुभव तथा सम्पर्क में आने वाली है ।

**मंत्र के शेष दो खंडों की व्याख्या पहले मंत्र के अनुसार**

Scanned with CamScanner

## मनसा परिक्रमा के मंत्रों की विशेष सामूहिक व्याख्या

मनसा परिक्रमा के मंत्रों के आशय पर विचार करते हुए हम विभिन्न दिशाओं के संकेत से परमात्मा की सृष्टि व्यवस्था के प्रमुख विभागों की कल्पना करते हैं और चार प्रधान दिशाओं—पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर— तथा दो नीचे ऊपर की दिशाओं की लक्षणा के आधार पर दैवी सृष्टि व्यवस्था के छः विभागों का विचार करते हैं और इस प्रकार दिशाओं की व्यंजना से सृष्टि व्यवस्था के ज्ञान विभाग, सदाचार विभाग, वाणिज्य विभाग, आत्मप्रकाश विभाग शौच विभाग तथा सार्वलौकिक संतुलन विभाग का वर्णन हमारे सामने उपस्थित होता है। दिशाओं की साधारण विशेषता का आश्रय लेकर उनके क्रमानुसार आलंकारिक रूप से सृष्टि व्यवस्था के उपर्युक्त विभागों का सम्बन्ध मर्यादित किया गया है और इस मर्यादा के भीतर साहित्यिक तथा आलंकारिक सौंदर्य की अनुपम छटा दिखाई पड़ती है। प्रत्येक मंत्र के तीन खंड हैं—प्रथम खंड व्यवस्था संगठन-परक, दूसरा खंड श्रद्धापरक तथा तीसरा खंड प्रेरणापरक है। पहले खंड में दिशा के नाम के साथ तत्सम्बन्धी परमात्मा की विभूति का उल्लेख है। तत्पश्चात् उस विभूति के उस विभाग की व्यवस्था विषयक तीन अन्य नियंत्रण-कर्ता स्वरूपों—अधिपतिः, रक्षिता तथा इषवः-का उल्लेख है। जिस प्रकार आजकल राजकीय शासन व्यवस्था में प्रत्येक विभाग का एक मंत्री होता है और उसके आधीन सारे प्रदेश का एक मुख्य व्यवस्थाधिकारी होता है और इस अधिकारी के अंतर्गत प्रत्येक जिले में स्थानीय व्यवस्था-अधिकारी और उसके अंतर्गत जनता से सीधे सम्पर्क में आने वाले निम्न कक्षा के अन्य कर्मचारी होते हैं, उसी प्रकार दैवी सृष्टि व्यवस्था के संगठन में मूल विभूति, अधिपति, रक्षिता तथा इषवः की कल्पना है। दैवी व्यवस्था से आजकल के राजकीय शासन की तुलना का भाव आगे लिखे चक्र से आसानी से समझ में आयेगा।

Scanned with CamScanner

| दिशा | विभूति | अधिपति | रक्षिता | इषवः |
|---|---|---|---|---|
| पूर्व | मंत्री शिक्षा विभाग | निर्देशक शिक्षा विभाग ( Director of Public Instructions) | विद्यालय ज़िला निरीक्षक | अध्यापकगण |
| दक्षिण | मंत्री सदाचार रक्षा विभाग (पुलिस) | प्रधान अधिकारी सदाचार रक्षा विभाग (I. G. of Police) | स्थानीय सदाचार रक्षा अधिकारी ( पुलिस कप्तान ) | सदाचार रक्षा विभाग के निम्न कर्मचारी(दरोगा कानेस्टबिल आदि ) |
| पश्चिम | मंत्री पूर्ति विभाग (Supply Deptt.) | प्रादेशिक अधिकारी पूर्ति विभाग | ज़िला अधिकारी पूर्ति विभाग | पूर्ति विभाग के निम्न कर्मचारी |
| उत्तर | मंत्री आध्यात्मिक विभाग (Ecclisiastical Deptt.) | आध्यात्मिक विभाग के प्रादेशिक अधिकारी | आध्यात्मिक विभाग के जिला अधिकारी | आध्यात्मिक विभाग के निम्न कर्मचारी |

Scanned with CamScanner

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| नीचे | मंत्री स्वास्थ्य विभाग | स्वास्थ्य विभाग के प्रादेशिक अधिकारी (D.P.H.) | स्वास्थ्य विभाग के जिला अधिकारी (सिविल सर्जन) | स्वास्थ्य विभाग के निम्न कर्मचारी (डाक्टर आदि) |
| ऊपर | मंत्रीअर्थ (संतुलन) विभाग | अर्थ विभाग के प्रादेशिक अधिकारी ( Chief Revenue Officer) | अर्थ विभाग के जिला अधिकारी (Collector) | अर्थ विभाग के निम्न कर्मचारी |

दिशाओं की साधारण विशेषता का आश्रय लेकर उनके क्रमानुसार अलंकारिक रूप से सृष्टि व्यवस्था के उपर्युक्त ज्ञान विभाग, सदाचार विभाग, वाणिज्य विभाग, आत्म प्रकाश विभाग, शौच विभाग, तथा सार्वलौकिक संतुलन विभाग के सम्बन्ध मर्यादित किये गये हैं और उनकी तुलना आजकल के राजकीय शासन विभागों से प्रस्तुत की गई हैं।



Scanned with CamScan

मनसा परिक्रमा के मंत्रों के प्रथम खंड में व्यवहृत रक्षिता तथा इषवः वाची उप-स्वरूपों के पूर्व, विशेषणों के अर्थों में, संज्ञा रूपी शब्द प्रयुक्त किये गये हैं। उनके अर्थों तथा पदव्याख्या के विषय में बहुधा मतभेद पाया जाता है। कहीं-कहीं तो इन विशेषण रूपी शब्दों के आश्रय से, उनके अर्थों को यथावत् रूप देकर मनसा परिक्रमा के इन मंत्रों में सर्पवाद को सिद्ध करने का हास्यास्पद प्रयत्न किया गया है और उसी युक्ति के आधार पर वैदिक काल में सर्प-पूजा के प्रचार की ओर संकेत किया गया है। इस तर्क की पुष्टि में मंत्रों में आये इस प्रकार के 'रक्षिता' के विशेषण रूपी शब्दों में 'असित' का अर्थ काला सांप, 'तिरश्चिराजी' का अर्थ टेढ़ी मेढ़ी चाल वाला सांप, 'पृदाकुः' का अर्थ अजगर सांप, 'स्वजः' का अर्थ अपने आप पैदा होने वाला सांप, 'कल्माषग्रीवः' का अर्थ चितकबरी गर्दन वाला सांप तथा 'श्वित्रः' का अर्थ सफ़ेद सांप किया गया है। इसी प्रकार कुछ टीकाकारों ने आधुनिक विकासवाद का आश्रय लेकर, दूसरे मंत्र में प्रयुक्त 'तिरश्चिराजी' शब्द का अर्थ पृष्ठविहीन रेंगने वाले प्राणी ( बिच्छू इत्यादि) तथा तीसरे मंत्र में आये 'पृदाकुः' शब्द का अर्थ अन्य पृष्ठ वाले भयंकर प्राणी किया है। अन्य टीकाकारों ने 'स्वजः' का अर्थ अपने आप पैदा होने वाले कीट, पतंग, खटमल, जूं इत्यादि, 'कल्माषग्रीव' का अर्थ काले रंग की पत्ती वाले सूखे वृक्ष तथा 'श्वित्र' का अर्थ प्राणियों में होने वाले साधारण कोढ़ रोग का किया है। कुछ टीकाकारों ने 'असित' तथा 'श्वित्र' को गुणवाची विशेषण मान कर उनका अर्थ क्रमशः 'असीम' (बंधन रहित) तथा 'पवित्र' किया है। इसमें संदेह नहीं कि रक्षिता के पूर्व आने वाले इन छः शब्दों के वास्तविक रूपों की कल्पना कई प्रकार से की जा सकती है—१. गुणवाची विशेषण के रूप में २. पंचमी विभक्ति के अर्थ के द्योतक विशेषण के रूप में, ३. छठी ( अथवा द्वितीया ) विभक्ति के अर्थ के द्योतक विशेषण के

Scanned with CamScanner

रूप में। नीचे लिखे उदाहरणों से यह विषय भली भांति समझ में आ जावेगा।

| समास | अर्थ | व्याकरण का रूप |
|---|---|---|
| पूर्ण रक्षक | पूरी रक्षा करने वाला | गुणवाची विशेषण |
| व्याधि रक्षक | व्याधि से रक्षा करनेवाला | पंचमी विभक्ति के अर्थ का द्योतक विशेषण |
| सम्पत्ति रक्षक | सम्पत्ति की (अथवा को) रक्षा करने वाला | षष्टी अथवा द्वितीया विभक्ति के अर्थ का द्योतक विशेषण |

ऊपर के भांति-भांति के मतों का अध्ययन करने के बाद अब हमें यह देखना है कि इन छः मंत्रों में वाक्य रचना की समानता की रक्षा के आधार पर, मंत्रों के वैदिक भावनापूर्ण वास्तविक आशय को भंग न करते हुए, रक्षिता तथा इषवः के पूर्व आने वाले इन विशेषणों का अर्थ करने में किसी समान शैली का प्रयोग कहां तक किया जा सकता है। अतः इस दृष्टि से उनके अर्थ, व्याकरण का रूप तथा पदच्छेद के विषय पर आगे की तालिका में प्रकाश डाला गया है।

मंत्र के दूसरे खंड में ऊपर वर्णित परमात्मा की विभूतियों तथा उनके उपस्वरूपों की चार श्रेणियों को अलग अलग नमस्कार किया गया है अर्थात् उनके लौकिक नियमों का अनुसरण करने की इच्छा प्रकट की गयी है। प्रत्येक मंत्र में विभूतियों और उनके उपस्वरूपों

Scanned with CamScanner

| क्रम | रक्षिता का पूर्ववर्ती शब्द | अर्थ | व्याकरण का रूप | पदच्छेद का रूप |
|---|---|---|---|---|
| १ | असितः | काला रंग (तिमिर, अज्ञान) | जाति वाचक संज्ञा भाव वाचक के अर्थ में | पंचमी विभक्ति के रूप में |
| २ | तिरश्चिराजी | टेढ़ी पंक्ति (चाल) | ,, | ,, |
| ३ | पृदाकुः | अजगर (प्राणियों की साधन हीनता) | ,, | ,, |
| ४ | स्वजः | मन में उत्पन्न होने वाला(विकृत विचार) | ,, | ,, |
| ५ | कल्माषग्रीवः | चितकबरी गर्दन (शुद्ध अशुद्ध मिश्रित वायुमंडल का पृथ्वी तथा अंतरिक्ष के बीच का ग्रीवा रूपी स्तंभ) | ,, | ,, |
| ६ | श्वित्रः | कोढ़ ( प्रकृतिव्यापी कान्ति विहीनता की अवस्था) | ,, | ,, |

Scanned with CamScanner

| इषवः का पूर्ववर्ती शब्द | अर्थ | व्याकरण का रूप | पदच्छेद का रूप |
|---|---|---|---|
| आदित्याः | आदित्य श्रेणी के विद्वान | संज्ञा, बहुवचन | षष्टी विभक्ति के रूप में |
| पितरः | पूर्वजों (की नैतिक परिपाटी) | ,, ,, | ,, |
| अन्नं | भोजन (आवश्यकता पूरक सामग्री) | ,, एकवचन | ,, |
| अशनि | बिजली (त्याग धारा द्वारा प्राप्त आत्म प्रकाश) | ,, ,, | ,, |
| वीरुधः | हरित वृक्ष पौधे | ,, बहुबचन | ,, |
| वर्षम् | मेघ वर्षा | ,, एकवचन | ,, |

Scanned with CamScanner

की चार श्रेणियों में से प्रत्येक श्रेणी का उल्लेख बहुवचन में है। इसका अभिप्राय यह है कि छः मंत्रों में सब मिलाकर उस श्रेणी के स्थान पर उल्लिखित जिन छः विभूतियों अथवा उनके उपस्वरूपों का वर्णन है उन सब की ओर सामूहिक रूप से प्रत्येक नमस्कार का संकेत है। मंत्रों की विभूतियों तथा उपस्वरूपों की तालिका नीचे के चक्र से अधिक स्पष्ट हो जावेगी।

| मन्त्र | विभूति | अधिपति स्वरूप | रक्षिता स्वरूप | इषव: स्वरूप |
|---|---|---|---|---|
| १ | अग्नि | पूर्व दिशा का अधिपति | असित रक्षिता | आदित्या: इषव: |
| २ | इन्द्र | दक्षिण दिशा का अधिपति | तिरश्चिराजी रक्षिता | पितर इषव: |
| ३ | वरुण | पश्चिम दिशा का अधिपति | पृदाकू रक्षिता | अन्नं इषव: |
| ४ | सोम | उत्तर दिशा का अधिपति | स्वजो रक्षिता | अशनि इषव: |
| ५ | विष्णु | नीचे की दिशा का अधिपति | कल्माषग्रीवो रक्षिता | वीरुध इषव: |
| ६ | बृहस्पति | ऊपर की दिशा का अधिपति | श्वित्रो रक्षिता | वर्षं इषव: |

इस प्रकार मनसा परिक्रमा के छः मन्त्रों में सब मिलाकर छः बार चार-चार अर्थात् चौबीस विभूतियों तथा उनके उपस्वरूपों का वर्णन है

Scanned with CamScanner

और प्रत्येक नमस्कार से क्रमशः इन्हीं छः विभूतियों और तीन श्रेणी के उनके छः-छः उपस्वरूपों की ओर संकेत किया गया है। इस खंड में मूल विभूतियों के लिए 'तेभ्यो' सर्वनाम तथा विभूति के इषवः उपस्वरूपों के लिए 'एभ्यो' विशेषण का प्रयोग किया गया है। 'तेभ्यो' (उनके लिए) का संकेत दूरस्थ पदार्थों के लिए होता है। परमात्मा की मूल विभूतियों की कल्पना साधारण मनुष्य के लिए अधिक दुर्ज्ञेय तथा दुर्गम समझी जाती है। अतः उनके लिए सुदूर पदवाची सर्वनाम का प्रयोग किया गया है। पर इसके विपरीत इषवः (संपर्क साधन रूपी दैवी उपस्वरूपों) के लिए 'एभ्यो' (इनके लिए) अर्थात् सामीप्य-वाची सर्वनाम का प्रयोग इसलिए किया गया है कि दैवी साधन के इन निकटस्थ स्वरूपों से हम नित्य सम्पर्क में आते रहते हैं और उनके साथ हमारा समीपस्थ सम्बन्ध है। मंत्रों में प्रयुक्त 'तेभ्यो' और 'एभ्यो' के रूप में दो भिन्न प्रकार के सर्वनामों के प्रयोग का यही रहस्य है।

मंत्र के प्रथम तथा द्वितीय खंड में वर्णित तथा संकेत की हुई दैवी विभूतियों तथा उनके उपस्वरूपों की व्यंजना से मनुष्य समाज की जिस व्यवस्था की ओर संकेत किया गया है उसका स्वरूप समझने में आगे की तालिका से सहायता मिलेगी।

मंत्र के तीसरे खंड में हमारे समाज में उपर्युक्त दैवी व्यवस्था का पालन न करने वाले मनुष्यों के साथ किए जाने वाले व्यवहार की मर्यादा की चर्चा है और उसमें दर्शाया गया है कि दैवी व्यवस्था का अनुसरण करने वाले समाज के संगठन से जो लोग सहयोग न करके उसका विरोध करें अथवा जिन्हें उपर्युक्त समाज के सदस्य, समाज-हित का विरोधी समझें उनसे भी हम किसी प्रकार की कटुता न रख और उनके लिए परमात्मा से यह प्रार्थना करें कि वह उन्हें सुधार कर

Scanned with CamScanner

| दिशा | विभूति | अधिपति | रक्षिता | इषवः |
|---|---|---|---|---|
| पूर्व | वेदोक्त ज्ञान | ऋषि तथा आचार्यगण | प्रमाणित ग्रंथ वेद शास्त्र आदि | विद्वत् मंडली |
| दक्षिण | सदाचार मर्यादा | महात्मागण | नैतिक शास्त्र | साधू सन्यासी |
| पश्चिम | वाणिज्य-सेवा मर्यादा | महाजनगण | व्यापारिक संगठन | दैनिकआवश्यकता पूरक व्यापारी |
| उत्तर | आत्म-प्रकाश | त्यागवीर पुण्यात्मागण | सादी जीवनचर्या | मानसिक शांति |
| नीचे | शौच मर्यादा | आरोग्य आचार्य | आ [illegible]ग्यशास्त्र | चिकित्साशास्त्री |
| ऊपर | सार्वलौकिक संतुलन मर्यादा | समाजवाद प्रचारक महात्म | दै[illegible]-निवारक संगठन | सहयोग प्रणाली |

दैवी व्यवस्था के अनुसार स्थापित समाज के अनुकूल बना दें। इस खंड में दो शब्दों पर विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है। द्वेष करने के अर्थ साधारणतया कटुता अथवा शत्रुता करने के लिये जाते हैं पर इन मंत्रों में द्वेष शब्द से दो प्रकार की परस्पर विरोधी इच्छाओं अथवा विचार-धाराओं को प्रकट करने का अर्थ लेना ही अधिक युक्तिसंगत है। इसी प्रकार जम्भ के साधारण अर्थ जबड़े के किये जाते हैं और जबड़ों के बीच में रखने का यह आशय समझा जाता है कि उनके बीच में रखी हुई चीज को जबड़े कुचल कर नष्ट कर देवें। पर इन मंत्रों में जबड़ों का अर्थ 'बाह्य रूप सुधारने वाला

साधन' लगाना अधिक अर्थबोधक है और जबड़ों के बीच में रखने का तात्पर्य उनके बीच में रखे हुए पदार्थ को अधिक मुलायम तथा सुपच बनाकर समाज रूपी शरीर में खप सकने योग्य कर देने का लगाना ही उपयुक्त है।

## मनसा परिक्रमा के मंत्रों का भावार्थ

पहला मंत्रः-पूर्व दिशा के साथ हम वेदोक्त ज्ञान विभूति तथा उसका प्रतिपादन करने वाले ऋषियों और आचार्यों की दैवि व्यवस्था का विचार करते हैं जिसके अंतर्गत वेद-शास्त्रों तथा अन्य प्रमाणित ग्रंथों का निर्देशन विद्वानों द्वारा हमारे अज्ञान का निवारण करता है।

वेदोक्त ज्ञान ऋषि तथा आचार्य गण प्रमाणित ग्रंथ तथा विद्वत् मंडली रूपी परमात्मा की उन विभूतियों और उनके सामाजिक स्वरूपों के आदेशों तथा उपदेशों का अनुसरण करने के लिए हम बार-बार संकल्प करते हैं।

जो मनुष्य दैवी नियमों का पालन करने वाली हमारी सामाजिक व्यवस्था से सहयोग न करके उसका विरोध करता है अथवा जिसे हमारी यह सामाजिक व्यवस्था जनहित का विरोधी समझती है उसके प्रति हम कोई कटुता न रख कर परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि वह दयालु प्रभू उसके विचारों में अभीष्ट सुधार करके उसे दैवी नियमों की व्यवस्था का अनुगामी बना देवे।

दूसरा मंत्रः—दक्षिण दिशा के साथ हम सदाचार मर्यादा विभूति तथा उसका प्रतिपादन करने वाले महात्माओं की दैवी व्यवस्था का

Scanned with CamScan

विचार करते हैं जिसके अंतर्गत नैतिक-शास्त्रों का निर्देशन साधू-सन्यासियों द्वारा हमारी कुचाल का निवारण करता है।

सदाचार मर्यादा, महात्मा, नैतिक-शास्त्र और साधू-सन्यासी रूपी परमात्मा की उन विभूतियों और उनके सामाजिक स्वरूपों के आदेशों तथा उपदेशों का अनुसरण करने के लिये हम बार-बार संकल्प करते हैं।

मंत्र के तीसरे खंड का भावार्थ प्रथम मंत्र के अनुसार

**तीसरा मंत्रः**—पश्चिम दिशा के साथ हम वाणिज्य-सेवा मर्यादा विभूति तथा उसका प्रतिपादन करने वाले महाजनों की दैवी व्यवस्था का विचार करते हैं जिसके अंतर्गत व्यापारिक संगठन का निर्देशन दैनिक आवश्यकता-पूरक व्यापारियों द्वारा हमारी साधनहीनता का निवारण करता है।

वाणिज्य-सेवा मर्यादा, महाजन, व्यापारिक संगठन तथा दैनिक आवश्यकतापूरक व्यापारी रूपी परमात्मा की उन विभूतियों तथा उनके सामाजिक स्वरूपों के आदेशों तथा उपदेशों का अनुसरण करने के लिये हम बार-बार संकल्प करते हैं।

मंत्र के तीसरे खंड का भावार्थ पहले मंत्र के अनुसार

**चौथा मंत्रः**—उत्तर दिशा के साथ हम आत्म-प्रकाश विभूति तथा उसका प्रतिपादन करने वाले त्यागवीर पुण्यात्मागण की दैवी व्यवस्था का विचार करते हैं जिसके अन्तर्गत सादी जीवनचर्या का निर्देशन मानसिक शांति द्वारा हमारे मानसिक विकारों का निवारण करता है।

आत्म-प्रकाश, त्याग वीर पुण्यात्मागण, सादी जीवनचर्या तथा मानसिक शांति रूपी परमात्मा की उन विभूतियों और उनके सामा-

Scanned with CamScanner

जिक स्वरूपों के आदेशों तथा उपदेशों का अनुसरण करने के लिये हम बार-बार संकल्प करते हैं।

**पांचवां मंत्र:**—नीचे की दिशा के साथ हम शौच-मर्यादा विभूति तथा उसका प्रतिपादन करने वाले आरोग्य-आचार्यों की दैवी व्यवस्था का विचार करते हैं जिसके अंतर्गत आरोग्य-शास्त्रों का निर्देशन चिकित्सा शास्त्रियों द्वारा हमारे रोग के कारणों का निवारण करता है।

शौच-मर्यादा, आरोग्य-आचार्य, आरोग्य-शास्त्र तथा चिकित्सा-शास्त्री रूपी परमात्मा की उन विभूतियों तथा उनके सामाजिक स्वरूपों के आदेशों तथा उपदेशों का अनुसरण करने के लिए हम बार-बार संकल्प करते हैं।

**मंत्र के तीसरे खंड का अर्थ पहले मंत्र के अनुसार**

**छठा मंत्र:**—ऊपर की दिशा के साथ हम सार्वलौकिक सन्तुलन-मर्यादा विभूति तथा उसका प्रतिपादन करने वाले समाजवाद प्रचारक महात्माओं की दैवी व्यवस्था का विचार करते हैं जिसके अंतर्गत दैन्य-निवारक संगठन का निर्देशन सहयोग प्रणाली द्वारा हमारे अभावों का निवारण करता है।

सार्वलौकिक सन्तुलन-मर्यादा, समाजवाद प्रचारक महात्मा, दैन्य-निवारक संगठन तथा सहयोग प्रणाली रूपी परमात्मा की उन विभूतियों तथा उनके सामाजिक स्वरूपों के आदेशों तथा उपदेशों का अनुसरण करने के लिये हम बार-बार संकल्प करते हैं।

**मंत्र के तीसरे खंड का अर्थ पहले मंत्र के अनुसार**

Scanned with CamScanner

## उपस्थान मंत्र

ओं उद्वयं तमसस्परिस्वः पश्यन्त उत्तरम् । देवं देवत्रा सूर्य्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥

### शब्दार्थ

| | | | |
|---|---|---|---|
| ओं | =परमात्मा की कृपा से | उत्तर | =उन्नत अवस्था को |
| उद्वयं | =उन्नति के अभिलाषी हम | देवं देवत्रा | =देवताओं में श्रेष्ठ देव |
| तमसस्परि | =अन्धकार से परे अज्ञानातीत | सूर्यं | =सूर्य को |
| | | अगन्म | =प्राप्त हुए हैं |
| स्वः | =अपनी | ज्योतिः उत्तमम् | =सर्वोत्तम ज्योति को |
| पश्यन्तः | =देखते हुए (अनुसरण) करते हुए | | |

पदार्थः—ओं परमात्मा की कृपा से उद्वयं उन्नति के अभिलाषी हम तमसस्परि अंधकार से परे ( अज्ञान उच्छेदक ) स्वः उत्तरं अपनी उन्नतिशील अवस्था ( की प्रेरणा ) को पश्यन्तः देखते हुए अर्थात स्वीकार करते हुए, देवत्रा देवं देवताओं में (सर्वश्रेष्ठ) देव ज्योतिः उत्तमं सर्वोत्तम ज्योति वाले (ज्योतिः द्वितीया नपुंसक लिंग) (उस प्रभू के) सूर्यं सूर्य सदृश द्रेदीप्यमान सामीप्य को अगन्म प्राप्त हुए हैं।

भावार्थः—इस मंत्र में परमात्मा के उपस्थान प्राप्ति की विधि बतलाई गई है। उपस्थान प्राप्ति के लिए प्रथम हमारे हृदय में पर्याप्त उत्साह जागृत होना चाहिये फिर अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए, आवश्यक क्रियाशीलता के रूप में, हमें अपने अज्ञान को अधिकाधिक दूर करने का प्रयत्न करते हुए और अपनी अवस्था के उत्तरोत्तर अधिक उन्नतिशील रूप को पहचानते हुए निरंतर आगे बढ़ते रहने की चेष्टा करते रहना चाहिये और भली भांति समझ लेना चाहिये कि परमात्मा

Scanned with CamScanner

की कृपा से हमारे पूर्वज उस परम देव, उत्तम प्रकाश वाले प्रभु, के सूर्य के समान देदीप्यमान उपस्थान को प्राप्त हुए हैं।

**उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्य्यम् ॥**

शब्दार्थ

| | | | |
|---|---|---|---|
| उद् | =ऊपर की ओर | केतवः | =झंडियां |
| उ+त्यं | =निश्चय ही उसको | वहन्ति | =फहरा रही हैं |
| जातवेदसं | =घट-घट वासी को | दृशे विश्वाय | =संसार के देखने के लिए |
| देवं | =परं देव को | सूर्य | =सूर्य को |

**पदार्थः**—(उद्+उ+त्यं) उ त्यं निश्चय ही उस जातवेदसं घट-घट वासी देवं परं देव को ( की ओर ) केतवः झंडियां—दैवी भावना परक प्रेरणाएं उद्वहन्ति ऊपर की ओर फहरा रही हैं अर्थात् संकेत कर रही हैं। दृशेविश्वाय संसार के देखने (पहचानने) के लिए सूर्यं (उस) सूर्य को।

**भावार्थः**—पूर्व मन्त्र में उपस्थान प्राप्ति की विधि बीज रूप से बतलाई गई थी। अब इस मंत्र में उसकी सिद्धि का व्यावहारिक रूप बतलाया गया है। उपस्थान प्राप्ति के लिए मनुष्य को किसी बाहर के साधन की आवश्यकता नहीं है। यह साधन तथा उसका लक्ष्य मनुष्य के हृदय में विद्यमान है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मनुष्य का हृदय ऊपर उठाने वाली दैवी भावनाओं से क्रियामाण होना चाहिए अर्थात् यह कि इन भावनाओं के अनुरूप ही उसका आचरण मर्यादित होना चाहिये। इस प्रकार की दैवी भावनाएं तथा उनका अनुसरण ही उपस्थान प्राप्ति की समुचित विधि है। उपस्थान रूपी सूर्य की प्राप्ति के के लिए संसार के प्राणी ऊपर की विधि से ऊपर उठ कर अपने अभीष्ट—उपस्थान—के दर्शन करते हैं।

Scanned with CamScanner

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः । आप्राद्यावापृथिवी अन्तरिक्ष१७ सूर्य आत्मा जगतस्त-स्थुषश्च स्वाहा ॥

शब्दार्थ

चित्रं =अद्भुत स्वरूप
देवानाम=देवताओं का
उद्+अगाद+अनीकम=उत्तम आचरण के लिये प्राप्त किया हुआ बल
चक्षु: =आंख (मार्ग दर्शक)
मित्रस्य=मित्र का
वरुणस्य=वरुण ( अर्द्रतापूर्ण भावना) का
आग्ने =अग्नि (ज्ञानदाताओं) का
आप्रा =सब ओर से
द्यावा =द्यु लोक
पृथिवी =भू लोक
अन्तरिक्षं=अधर लोक
सूर्य =वाह्य प्रकाशक सूर्य
आत्मा =अन्त: प्रकाशक आत्मा
जगत: =चल संसार का
तस्थुष: =स्थावर संसार का
च =और
स्वाहा =सुन्दर कहा गया है

पदार्थ:—चित्रं चित्र विचित्र दृश्यों का अद्भुत स्वरुप, देवानामुदगाद-नीकं (देवानाम्+उद+अगात्+अनीकं) देवताओं–संसार की जड़ तथा चेतन बड़ी-बड़ी शक्तियों–का दिव्य आचरण हेतु प्राप्त किया हुआ बल (अर्थात उसका वास्तविक आधार) ( इसी प्रकार मनुष्य के ) मित्रस्य मित्रता पूर्ण शुभा-कांक्षियों का, वरुणस्य आर्द्रतापूर्ण ( स्निग्धतापूर्ण ) पर हितैषियों का तथा अग्नेः प्रकाशपूर्ण ज्ञानदाताओं (आचार्यों) का चक्षु: (वास्तविक) मार्ग-दर्शक अर्थात् प्रेरक, आप्रा सब ओर ( निज आलोक ) से व्याप्त द्यावा द्यौ

Scanned with CamScanner

लोक पृथिवी पृथ्वी लोक अन्तरिक्षं (और) अंतरिक्ष लोक (इसी प्रकार) जगतः चल संसार का तस्थुषः (और) स्थावर संसार का सूर्य बाहर से प्रकाश देने वाला (एवं) आत्मा भीतर से प्रकाश देने वाला स्वाहा ( उस प्रभू के स्वरूप का यह वर्णन ) सुन्दर कहा गया है ।

भावार्थः—पूर्व दो मंत्रों में उपस्थान प्राप्ति के लिए आवश्यक श्रद्धा तथा विधि का वर्णन किया जा चुका है । अब जिस प्रभू का उपस्थान प्राप्त करना है इस मंत्र में उसके स्वरूप की कल्पना का किंचित दिग्दर्शन है । आरंभ में प्रार्थी कहता है कि उसका स्वरूप अत्यंत अद्भुत तथा अवर्णनीय है । फिर उसका संक्षिप्त वर्णन करते हुए कहता है कि वही देवताओं के उपार्जित बल का वास्तविक आधार है, वही संसार में प्राणियों के शुभैषियों, परम हितैषियों तथा ज्ञानदाता आचार्यों की प्रेरक शक्ति है, वही तीनो लोकों—सूर्य पृथ्वी तथा अंतरिक्ष—में पूर्ण-रूप से व्याप्त हो रहा है और वही चल तथा अचल संसार का बाहर तथा भीतर से प्रकाश देने वाला है ।

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् ।पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ श्रृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥

Scanned with CamScanner

## शब्दार्थ

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| तत | = वह | | शरदः शतं | = सौ वर्षों तक |
| चक्षुः | = आंख (पथप्रदर्शक) | | शृणुयाम | = (हम) सुनें |
| देवहितं | = दैविक शक्तियों का बल | | शरदः शतं | = सौ वर्षों तक |
| | | | प्रब्रवाम | = (हम) बोलें |
| पुरस्तात | = पहले से | | शरदः शतं | = सौ वर्षों तक |
| शुक्रं | = बीजरूप-आधार | | अदीनाः | = स्वाधीन |
| उच्चरत | = प्रतिष्ठित | | स्याम | = होवें |
| पश्येम | = (हम) देखें | | शरदः शतं | = सौ वर्षों तक |
| शरदः शतं | = सौ शरद ऋतुओं तक | | भूयः | = अधिक |
| जीवेम | = (हम) जीवन व्यतीत करें | | च | = और |
| | | | शरदः शतात् | = सौ वर्षों से |

**पदार्थः**— ( **तच्चक्षुः=तत+चक्षुः**) **तत** वह (परमात्मा) **देवहितं** संसार की महान शक्तियों का बल (और) **चक्षुः** आंख अर्थात् पथप्रदर्शक (नियन्ता) **पुरस्ताच्छुक्रं (पुरस्तात्+शुक्रं)** पहले से सक्रिय बीज रूप से **उच्चरत्** प्रतिष्ठित ( विद्यमान ) (उसका विचार करते हुए और उसकी कृपा का आश्रय लेकर हम यह चाहते हैं कि) **पश्येम शरदः शतं** हम सौ शरद ऋतुओं अर्थात वर्षों तक ( जीवन भर ) देखें अर्थात् ज्ञानोपार्जन करें **जीवेम शरदः शतं** सौ वर्ष तक उपार्जित ज्ञान के अनुसार अपना आचरण मर्यादित करते हुए जीवन व्यतीत करें। **शृणुयाम शरदः शतं** सौ वर्ष तक (अपने ज्ञान की त्रुटियों को दूर करने के आशय से भिन्न-भिन्न विचार धाराओं को निष्पक्ष तथा निष्कपट भाव से ) सुनते रहें। **प्रब्रवाम शरदः शतं** (और इस प्रकार संशोधित ज्ञान का) सौ वर्ष तक उपदेश करते रहें, **अदीनाःस्याम शरदः शतं** (और) सौ वर्ष तक (ऊपर लिखी मर्यादा के अनुसार जीवन बिताने के लिए आर्थिक शारीरिक तथा मानसिक रूप से) स्वाधीन तथा उत्साहपूर्ण रहें। **भूयश्च शरदः शतात्** (और इन्हीं मर्यादाओं का पालन करते हुये) सौ वर्ष से भी अधिक जीवन व्यतीत करें।

Scanned with CamScanner

भावार्थ:—परमात्मा के उपासक के रूप में हमें इस बात का विश्वास होना चाहिये कि विश्व की बड़ी-बड़ी जड़ और चेतन शक्तियों का बलदाता परमात्मा ही है, वही उनका पथ-प्रदर्शक है और वस्तुत: वही उनका आदिकारण है। अत: हम अपनी जीवन व्यवस्था के नियंत्रण में यह लक्ष्य रखें कि प्रथम हम भली भाँति ज्ञानोपार्जन करें और उसी के अनुसार अपने पथप्रदर्शन के लिये सिद्धान्त स्थिर करके अपने जीवन में उन पर व्यवहार करने का नियम बनावें। साथ ही भिन्न-भिन्न विचार के लोगों के मतों का अध्ययन करते हुए अपनी आत्मसमीक्षा करते रहें और जहां कहीं अपने विचारों में त्रुटि जान पड़े उसे सुधारते रहें और अपने परिष्कृत ज्ञान के अनुसार अपने विचारों का समाज में प्रचार करें। स्वावलंबी और उत्साहपूर्ण रहकर ही हम जीवन की उपयुक्त मर्यादाओं का पालन करें और उनकी पूर्ति के लिए कभी दूसरों के आगे हाथ न फैलायें। जीवन भर हमारा यही क्रम रहे और जीवन की साधारण अवधि से अधिक जीकर भी हम इन मर्यादाओं का उपभोग करें।

## उपस्थान मंत्रों पर एक सामूहिक दृष्टि

उपस्थान मंत्रों के पदच्छेद तथा भावार्थ के विषय पर विचार कर लेने के पश्चात् अब हमें सामूहिक रूप में सन्ध्या में नियत किये गये उनके क्रम के विषय पर विचार करना है। संध्या में इन मंत्रों का जो क्रम रखा गया है वह स्वामी दयानन्द जी द्वारा रचित पंच-महायज्ञ विधि के आधार पर अवलम्बित है। वस्तुत: उपस्थान के यह चारों मंत्र यजुर्वेद से लिये गये हैं और उक्त स्वामी जी रचित संस्कार-विधि के गृहाश्रम, प्रकरण में इन मंत्रों का यजुर्वेदीय क्रम अंकित है। यह क्रम संध्या में दिये गये क्रम के समान नहीं है। यजुर्वेद में इन मंत्रों का क्रम इस प्रकार है।

Scanned with CamScanner

यजुर्वेद अध्याय १३ मंत्र ४६ चित्रं देवानामुदगादनीकं……
„ „ ३३ „ ३१ उदुत्यं जातवेदसं देवं……
„ „ ३५ „ १४ उद्वयं तमसस्परिस्व……
„ „ ३६ „ २४ तच्चक्षुर्देवहितं……

स्वामी दयानन्द ने सन्ध्या में इन मंत्रों का जो क्रम रखा है उसमें संध्या के उपस्थान विषय की एक विधिवत योजना उपस्थित है। पहले मन्त्र में उपस्थान के लिए आवश्यक श्रद्धा, दूसरे में उपस्थान प्राप्ति की विधि, तीसरे में उपस्थान के लक्ष्यभूत प्रभू के स्वरूप के कुछ लक्षण और चौथे में अपने दैनिक आचरण में प्रभू के उस स्वरूप के मुख्य लक्षणों की स्मृति तथा उपस्थान के लिए उपयुक्त सांसारिक जीवन-यापन के आदर्श की ओर संकेत किया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि संध्या के उपस्थान प्रकरण में इन मंत्रों का जो क्रम है वह प्रभू के उपस्थानार्थ हमारे विकास-क्रम का विचार करके ही स्थिर किया गया है और सर्वथा युक्तिसंगत है। उपस्थान के यह मंत्र यजुर्वेद के भिन्न-भिन्न अध्यायों में प्रकरण के अनुसार अलग-अलग उपस्थित हैं और यद्यपि प्रत्येक मंत्र का अर्थ स्वतंत्र रूप से भी अत्यंत सारगर्भित है पर संध्या के अनुसार यजुर्वेद में इन चारो मंत्रों में सामूहिक रूप से कोई क्रमबद्ध विषय या योजना स्थापित नहीं है।

Scanned with CamScanner

## गायत्री मंत्र
### (गुरु मंत्र)

**ओं भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥**

### शब्दार्थ

| शब्द | अर्थ | शब्द | अर्थ |
|---|---|---|---|
| ओं | = परमात्मा का निर्गुण स्वरूप वाची नाम | भर्गः | = तेज |
| भूः भुवः स्वः | = परमात्मा का भूः भुवः स्वः रूपी सगुण स्वरूप | देवस्य | = दिव्य गुण स्वरूप परमात्मा के |
| तत् | = उस | धीमहि | = हम धारण करें |
| सवितुः | = सृजनकर्ता के | धियः | = बुद्धियों को |
| वरेणयम् | = ग्रहण करने योग्य | यः | = जो |
| | | नः | = हमारी |
| | | प्रचोदयात् | = प्रेरित करे |

**पदार्थः**—ओं ओं रूपी निर्गुण स्वरूप (तथा) भूः भुवः स्वः 'भूः' 'भुवः' 'स्वः' रूपी सगुण स्वरूप, **सवितुः** (सवितृ का षष्ठी रूप) विश्व के निर्माण-कर्ता **देवस्य** (देव का षष्टी रूप) दिव्य गुणों के पुंज परमात्मा के **तत्** उस **वरेण्यम्** ग्रहण करने योग्य **भर्गः** तेज को **धीमहि** (धी धातु का विधि रूप, उत्तम पुरुष, बहुवचन ) हम धारण करें अर्थात् उसका अनुसरण करें **यः** जो **नः** **धिये** हमारी (तीन प्रकार की ज्ञानात्मक, विवेकात्मक तथा श्रद्धात्मक) कल्पनाओं को **प्रचोदयात्** ( प्रचुद् धातु का विधि रूप, एकवचन, प्रथम पुरुष) सन्मार्ग पर चलावे ।

**विशेष व्याख्याः**—गायत्री मंत्र को गुरु मंत्र भी कहते हैं और इस मंत्र को वेदों का सार भी कहा गया है । इस मंत्र में मनुष्य के चिन्तन

के लिए थोड़े शब्दों में, परमात्मा के मुख्य लक्षणों का वर्णन है और उनके अनुसरण का संकल्प तथा इस प्रकार के संकल्प के लक्ष्य का उल्लेख है। परमात्मा की कल्पना उसके निगुण तथा सगुण रूप द्वारा ही की जा सकती है। 'ओं' नाम को उसके निगुण रूप का परिचायक समझना चाहिये। वैदिक साहित्य की तीन प्रसिद्ध व्याहृतियां 'भूः' 'भुवः' 'स्वः' में उसके सगुण रूप का संकेत मिलता है। यह सारा विश्व परमात्मा के ही स्वरूप का प्रतिबिम्ब है। परमात्मा को 'विश्व-गर्भः' कहा गया है। अतः विश्व के स्वरूप के संक्षिप्त संकेत के विषय में पृथक-पृथक दृष्टियों से की गई कल्पनाओं के आधार पर इन व्याहृतियों के भिन्न-भिन्न आशय स्थिर किये गये हैं। इनमें से कुछ का वर्णन नीचे की तालिका में दिया जाता है।

| स्वरूप | भूः | भुवः | स्वः |
|---|---|---|---|
| लोक सम्बन्धी | पृथ्वी | अंतरिक्ष | द्यौ लोक |
| ब्रह्मांड ,, | अग्नि | वायु | आदित्य |
| पिंड ,, | प्राण | अपान | व्यान |
| गुण ,, | संग्रह | त्याग | विरक्ति(अनासक्ति) |
| ,, ,, | सुख | दुख | समभाव |
| ,, ,, | सामीप्य | दूरत्व | व्यापकत्व |
| वेद ,, | ऋग्वेद | यजुर्वेद | सामवेद |

Scanned with CamScanner

इस प्रकार इन व्याहृतियों के भांति-भांति के अनेक संकेतों पर विचार करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि परमात्मा की विभूतियों के भिन्न-भिन्न स्वरूप विश्व की व्यवस्था के प्रतीक हैं। परमात्मा के इस प्रकार के सगुण स्वरूपों का विचार करने के पश्चात् गायत्री मंत्र में परमात्मा के दो प्रमुख गुणों का उल्लेख है। उसे 'सविता' अर्थात् निर्माण कला स्वरूप तथा 'देव' अर्थात् दिव्य शक्ति स्वरूप कहा गया है और प्रार्थी परमात्मा के इन दोनों गुणों के उपयोगी अंशों के अनुसरण करने की कामना करता है जिससे कि उसका ज्ञान, विवेक बुद्धि तथा श्रद्धा सन्मार्ग पर प्रेरित हों। परमात्मा के केवल उपयोगी अथवा आवश्यक अंश का अनुसरण करने की भावना में यह रहस्य निहित है कि परमात्मा की शक्ति तथा उसका कार्यक्षेत्र महान है और हमारे लिए उसका पूर्ण अनुसरण करने की चेष्टा करना अव्यवहारिक तथा अनावश्यक है। अतः हम परमात्मा के तेज के केवल उतने अंश का अनुसरण करने की इच्छा करते हैं जितना हमारे सामाजिक तथा आध्यात्मिक विकास के लिए अभीष्ट तथा आवश्यक है।

गायत्री मंत्र में चित्रित उपर्युक्त विचार से हमको अपने जीवन में निर्माण-कला (रचनात्मक कार्य शैली) तथा दिव्य भावना (स्वार्थहीन विश्व-हितैषी दृष्टिकोण) का महत्व भली भांति ज्ञात हो जाता है और हमें यह प्रेरणा मिलती है कि इन दोनों गुणों के अनुसरण द्वारा हम अपने ज्ञान, सद्विवेक तथा श्रद्धा को विकसित करने का प्रयत्न करते रहें।

भावार्थः—परमात्मा का निर्गुण रूप साधारण मनुष्यों के लिए अचिन्तनीय है। उसकी कल्पना हमें 'ओं' के उच्चारण मात्र से कर लेना पर्याप्त है। पर परमात्मा का साधारण सगुण स्वरूप 'भूः' 'भुवः' 'स्वः' का सम्पर्क हमारे नित्य के जीवन में होता रहता है। परमात्मा

के सम्पूर्ण गुण अवर्णनीय हैं, उसकी शक्ति का विस्तार असीम है और उसकी लीला विचित्र है। एक ओर वह विश्व का निर्माण करता है, दूसरी ओर वह उसका विग्रह भी करता है। एक ओर वह दयालु होकर प्राणियों को अधिक से अधिक सुख देता है, दूसरी ओर वह न्यायकर्ता के रूप में उन्हें कठोर से कठोर दंड देने में भी नहीं हिचकिचाता। उसी के ही रचे नियमों के अनुसार भूचाल आता है, आँधियां चलती हैं जलप्लावन होता है और दावाग्नि लगती है जिससे मानुषिक संसार की भयंकर हानि होती हुई जान पड़ती है और मनुष्य समाज में त्राहि-त्राहि मच जाती है। अतः हम उसके भिन्न-भिन्न तथा वाह्य दृष्टि से बहुधा परस्पर विरोधी गुणों के पूर्वापरि को भली भांति समझने में असमर्थ हैं और हमें इस विवाद की उलझन में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। परमात्मा की कल्पना निर्माण-कला-युक्त पिता तथा शक्ति-सम्पन्न दिव्य हितकारी के रूप में करते हुए उसके इन उपयोगी तथा अनुकरणीय गुणों का अनुसरण करने की चेष्टा करना हमारे लिए पर्याप्त है। ऐसा करने से हमारा ज्ञान, हमारा विवेक और हमारी श्रद्धा सन्मार्ग पर प्रेरित होकर हमारा परम कल्याण होगा।

### नमस्कार मंत्र

**नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥**

Scanned with CamScanner

शब्दार्थ

| | | | |
|---|---|---|---|
| नमः | =नमस्कार | मयस्कराय | =सुख की रक्षा करने वाले स्वरूप के लिये |
| शम्भवाय | =(परमात्मा के) शम्भू रूप के लिये | च | =और |
| च | =और | नमः | =नमस्कार |
| मयोभवाय | =सुख देनेवाले स्वरूप के लिए | शिवाय | =(परमात्मा के) रूपान्तरकारी स्वरूप के लिए |
| च | = और | | |
| नमः | =नमस्कार | च | =और |
| शंकराय | =परमात्मा के शंकर स्वरूप के लिए | शिवतराय | =अधिकशुभ स्वरूप के लिये |
| च | =और | च | =और |

पदार्थः—**नमः शम्भवायच** और (फिर मेरा) नमस्कार है परमात्मा के शम्भू—कुशल मंगल देने वाले—**मयोभवायच** और सुख देने वाले स्वरूप के लिए, **नमः शंकरायच मयस्कराय च** और (मेरा) नमस्कार है परमात्मा के शंकर—कुशल मंगल की रक्षा करने वाले—तथा मयस्कर–सुख की रक्षा करने वाले—स्वरूप के लिए, **नमः शिवाय च शिवतराय च** और (इसी प्रकार मेरा) नमस्कार है परमात्मा के शिव—शुभ रूपान्तरकारी—तथा शिवतर—अधिक शुभ स्वरूप के लिए।

**भावार्थः**—अपनी आध्यात्मिक उन्नति के निमित्त उपर्युक्त संध्या-वंदन का आश्रय लेने तथा परमात्मा से इस प्रयोजन की सिद्धि के लिए आवश्यक साधन तथा आत्मबल की याचना करने के पश्चात प्रार्थी इस विश्वास के साथ अपनी प्रार्थना समाप्त करता है कि परमात्मा के

Scanned with CamScanner

'शम्भू' 'शंकर' तथा 'शिव' तीनों ही भांति के रूप मनुष्य के लिये सब प्रकार से शुभ तथा हितकारी हैं और जहां एक ओर वह परमात्मा से अपनी कुशल मंगल और मानसिक शांति चाहता है उसी के साथ वह इन सांसरिक सफलताओं के क्षणभंगुर तथा सतत परिवर्तनशील प्रकृति से भी अनभिज्ञ नहीं है और परमात्मा के रूपान्तरकारी सुन्दर शिव स्वरूप का भी—जो वस्तुतः उन्नति के क्रम का सहायक होने से अधिक शुभ है—सदैव स्वागत करने को तैयार है।

## संध्या विधि पर एक विहंगम दृष्टि

संध्या में प्रयुक्त मंत्रों के आशय के आधार पर पूर्ण संध्या विधि को तीन खंडों में विभाजित किया जा सकता है और इस प्रकार विभाजित किये हुए पहले खंड को वैयक्तिक, दूसरे को सामाजिक और तीसरे को आध्यात्मिक कह सकते हैं। आचमन मंत्र से लेकर अघमर्षण मंत्र पर्यन्त वैयक्तिक विषय का संकेत है। मनसा परिक्रमा के मंत्र सामाजिक व्यवस्था से सम्बन्ध रखते हैं और उपस्थान मंत्रों में भौतिक जीवन के नित्य के मर्यादित व्यवहार द्वारा दैवी गुणों का अनुसरण अर्थात् आध्यात्मिक उन्नति करने की विधि का उल्लेख है और इस उद्देश्य का निष्कर्ष गायत्री मंत्र में वर्णित है। वस्तुतः मनुष्य के जीवन के पूर्ण विकास के लिए उपर्युक्त तीनों विधियों का आश्रय लेना आवश्यक है और यही संध्यावंदन का एक मात्र उद्देश्य है।

Scanned with CamScanner

# संध्या में प्रयुक्त संस्कृत शब्दों का हिन्दी अर्थ

| शब्द | अर्थ | शब्द | अर्थ |
|---|---|---|---|
| अकल्पयत | व्यवस्था की है | अभिष्टये | सेवा, पूजा अथवा यज्ञ के लिये |
| अगन्म | प्राप्त हुए हैं | अभीद्धात् (अभि + इद्धात्) | देदीप्यमान |
| अग्निः | परमात्मा का प्रेरणात्मक तथा प्रकाशक स्वरूप | अर्णवः | प्रक्षुब्ध आकाशस्थ समुद्र (विशाल क्षेत्र) |
| अग्ने: | प्रकाशक (पथ-प्रदर्शक) का | अशनि | वज्र, बिजली |
| अजायत | उत्पन्न हुआ | असितः | काला रंग, अन्धकार, अज्ञान, बन्धनहीनता |
| अथो (अथ) | तब, पश्चात | अस्तु | हो |
| अदीनाः | स्वाधीन | अस्मान | हमको |
| अधि | ऊपर से, बीज रूपसे | अहोरात्राणि | (ब्रह्म) दिन और रात्रियां |
| अधिपति | शासक, स्वामी | आदित्याः | विद्वत् मंडली |
| अध्यजायत (अधि + अजायत) | बीज रूप से उत्पन्न हुआ | आपः (अप का बहुवचन) | जल धारायें, जल-राशियाँ |
| अनीकम् | सेना, बल | आप्रा | सब ओर से व्याप्त |
| अन्तरिक्षं | लोकों के बीच का रिक्त स्थान | इन्द्रः | दिव्य शक्तियों का स्वामी |
| अन्नम् | भोज्य पदार्थ | | |
| अभि | अधिकता से, सब ओर से | | |

Scanned with CamScanner

| शब्द | अर्थ |
| --- | --- |
| इषव: | वाण समूह, दूरस्थ पदार्थों से सम्पर्क स्थापित करने वाले साधन |
| उ | निश्चय ही |
| उच्चरत | प्रतिष्ठित |
| उत्तमम् | सबसे अच्छा |
| उत्तरम् | अधिक अच्छा |
| उदगात् (उद्+अगात्) | उत्तम आचरण के लिए प्राप्त किया हुआ |
| उदीची | उत्तर |
| उद् | अच्छा |
| ऊर्ध्वा | ऊपर |
| ऋतं | दैवी व्यवस्था के व्यापक नियम, वेदोक्त ज्ञान |
| एभ्य: | इनके लिए |
| ओम् | परमात्मा का नाम |
| कंठ | गला |
| कंठे | गलेमें |

| शब्द | अर्थ |
| --- | --- |
| करतल | हथेली |
| करपृष्ठ | हथेली की पीठ |
| कल्माष | चितकबरा, शुद्ध अशुद्ध मिश्रित |
| केतव: | झंडियां, दैवी प्रेरणाएं |
| खम् | आकाश, सर्वव्यापी |
| ग्रीवा | गर्दन, स्तंभ |
| च | और |
| चक्षु: | आँख, पथ-प्रर्दशक |
| चन्द्रमस | चांद |
| चित्र | चित्र-विचित्र, अद्भुत |
| जगत: | चल संसार का |
| जन: | परमात्मा का प्रजनन स्वरूप |
| जम्भे | जबड़े में, सुधार रूपी दबाव में |
| जातवेदसं | घट-घट वासी को |
| जीवेम | जीवन यापन करें |
| ज्योति: | लाभकारी प्रकाश |
| तत: | उससे |

Scanned with CamScanner

| शब्द | अर्थ |
|---|---|
| तत् | वह |
| तपः | परमात्मा का श्रम प्रेरक स्वरूप |
| तपसः | तेज से, अनन्त सामर्थ्य से |
| तिरश्चिराजि: | टेढ़ी पंक्ति, टेढ़ी चाल |
| तेभ्यः | उनके लिए |
| तमसः | अन्धकार से, अज्ञान से |
| तम | उसको |
| तस्थुषः | स्थावर का |
| त्यं (तं) | उसको |
| दक्षिणा (दक्षिण) | दाहिना |
| दध्मः | धरते हैं, उपस्थित करते हैं |
| दिग् | दिशा |
| दिवं | सूर्यादि लोकों को |
| द्विष्मः | द्वेष करते हैं |
| देवत्रा | देवों में |
| देव | दिव्यगुणयुक्त |
| देवहितं | देवताओं का बल |

| शब्द | अर्थ |
|---|---|
| देवस्य | देवता का |
| देवनाम् | देवताओं के |
| देवी: (स्त्री लि०) | दिव्यगुणयुक्त |
| दृशे | देखने के लिए |
| द्यावा | सूर्यादि लोक |
| द्वेष्टि | द्वेष करता है |
| धाता | रचयिता, सृजन कर्ता (धातृ का प्रथमा एकवचन) |
| धियः | बुद्धियों को |
| धीमहि | हम धारण करें |
| ध्रुवा | नीचे (पृथ्वी की ओर) की दिशा |
| नः | हमको, हमारे लिए, हमारा |
| नमः | नमस्कार |
| नाभिः | नाभि-प्रदेश |
| नाभ्यां | नाभि-प्रदेश में |
| नेत्रयोः | दोनों नेत्रों को |
| परि | पृथक |
| पश्यन्तः | देखते हुए, स्वीकार करते हुए |

Scanned with CamScanner

| शब्द | अर्थ |
|---|---|
| पश्येम | देखें, ज्ञानोपार्जन करें |
| पादयोः | दोनों पैरों में |
| पितरः | पूर्वजगण, पूर्वजों का ज्ञान |
| पीतये | पीने अर्थात शरीर रक्षा के लिए |
| पुनः | फिर |
| पुनातु | पवित्र करें |
| पुरस्तात् | पहले से |
| पूर्वं | पहले |
| पृदाकुः | अजगर |
| प्रचोदयात् | प्रेरित करें |
| प्रतीची | पश्चिम |
| प्रब्रवाम | बतलावें, उपदेश करें |
| प्राची | सामने की ओर,पूर्व |
| बलं | बल |
| बाहुभ्यां | दोनों बाहुओं के लिए |
| बृहस्पति | श्रेष्ट देव |
| भर्ग | तेज |

| शब्द | अर्थ |
|---|---|
| ब्रह्म | सृजनशील परमात्मा |
| भवन्तु | होवें |
| भुवः | परमात्मा का भुवः स्वरूप |
| भूः | परमात्मा का भूः स्वरूप |
| भूयः | फिर, अधिक |
| मयस्कराय | सुख की रक्षा करने वाले के लिए |
| मयोभवाय | सुख देने वाले के लिए, |
| महः | परमात्मा का महः स्वरूप |
| मिषतः | पलक भाँजने की भाँति स्वभाव से |
| मित्रस्य | मित्र का |
| यः | जो |
| यथा | जैसे |
| यं | जिमको |
| यशः | कीर्ति |

Scanned with CamScanner

| शब्द | अर्थ |
|---|---|
| रक्षिता | रक्षा करने वाला |
| रात्रि | (ब्रह्म) रात |
| वः | आपके, आपको, आपके लिए |
| वयं | हम |
| वरुणः | आर्द्रतापूर्ण, वात्सल्य-पूर्ण |
| वरुणस्य | घनिष्ट हितैषी का |
| वरेण्यम | ग्रहण करने योग्य |
| वर्ष | मेघ, वर्षा |
| वशी | नियन्ता, स्वामी |
| वहन्ति | बहती हैं, फहराती हैं |
| वाक् | वाणी |
| विदधत | नियंत्रित किये हैं |
| विश्वस्य | जगत के |
| विष्णु | परमात्मा का रक्षक स्वरूप |
| वीरुधः | पौधे, वृक्षादि |
| शतम् | सौ |
| शतात् | सौ से |

| शब्द | अर्थ |
|---|---|
| शम् | कुशल-मंगल, कल्याण |
| शंकराय | कल्याण की रक्षा करने वाले के लिए |
| शम्भवाय | कल्याण देने वाले के लिए |
| शंयोः | कल्याण और आरोग्य की (युः=यावनं भयानाम) |
| शरदः | शरद (वर्ष) के, शरद के लिए |
| शिरः | शिर |
| शिरसि | शिर में |
| शिवतराय | अधिक शुभ स्वरूप के लिए |
| शिवाय | रूपान्तरकारी स्वरूप के लिए |
| शुक्रं | सक्रिय बीज रूप |
| शृणुयाम | सुनें, ध्यान देवें |
| श्रोत्रं | कान |
| श्वित्रः | कोढ़ (प्रकृति व्यापी कान्तिविहीन अवस्था) |

Scanned with CamScanner

| शब्द | अर्थ | शब्द | अर्थ |
| --- | --- | --- | --- |
| **सत्यं (सतेहितंयत्)** | भौतिक व्यवस्था के, मर्यादित नियम विवेकबुद्धि | **सूर्या** | सूर्य |
| **समुद्रात्** | समुद्र से | **सोम** | परमात्मा का शांति स्वरूप |
| **संवत्सरः** | समय की कल्पना का आधार | **स्याम** | होवें |
| **सर्वत्र** | सब जगह | **स्रवन्तु** | टपकें, रसें |
| **सवितुः** | उत्पन्न करने वाले के | **स्वः** | स्वतंत्र मध्यस्थ लोक को, अपने को |
| **सूर्यः** | सूरज, बाहर से प्रकाश मिलने का साधन | **स्वजः** | अपने आप उत्पन्न होने वाला |
| **सूर्य्य** | सूर्य, जगत का प्रकाशक | **स्वाहा** | सुन्दर कहा गया है |
| | | **हृदयं** | हृदय |
| | | **हृदये** | हृदय में |

ई वैदिक पुस्तकालय मुम्बई

मुद्रक: रामचन्द्र, स्टार प्रेस, लखनऊ

सौजन्य - पं. अर्जुन प्रसाद आर्य मुम्बई

Scanned with CamScanner